महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६२ **अंक** : ०५
दयानन्दाब्दः १९५
विक्रम संवत्: फाल्गुन शुक्ल २०७६
कलि संवत्: ५१२०
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

i jki dkjh

मार्च प्रथम २०२०

अनुक्रम

०१. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-४८	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. ईश्वर के स्वरूप का दार्शनिक....	पं. क्षितीश कुमार	१६
०५. सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर...	डॉ. रामप्रकाश वर्णी	२५
०६. ऋग्वेद का नमूना भाष्य	मोहनचन्द	२७
०७. संस्था की ओर से...		३०
०८. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३३
०९. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने परोपकारिणी सभा का निर्माण क्यों किया?

गुरु विरजानन्द दण्डी सरस्वती से आर्ष शास्त्रीय शिक्षा, चिन्तन की आर्ष दिशा, और वेदों एवं वेदानुकूल आर्ष शास्त्रों का उद्धार, प्रचार-प्रसार करने का आदेश प्राप्त होने के बाद स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदोद्धार, समाज-सुधार आदि उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्यक्षेत्र में उतर गये। महर्षि ने वैचारिक क्रान्ति के द्वारा समाज में ऐसा नवजागरण उत्पन्न किया कि कई हजार वर्षों से सिर उठाये खड़े पाखण्डों, अन्ध-विश्वासों, कुरीतियों, रूढियों के गढ़ों की नींव हिल गई। अन्ध-परम्पराओं और मनुष्य जाति में विरोध उत्पन्न करनेवाले मत-मतान्तरों का खण्डन करने का महर्षि का यही सदुद्देश्य था कि मनुष्य जाति में परस्पर विरोध का भाव नष्ट हो जाये और प्रेम, सौहार्द, ऐक्यभाव बढ़े। महर्षि के मतानुसार उसका उपाय यही था कि विश्व में एक धर्मग्रन्थ, एक धर्म, एक ईश्वर, एक भाषा मान्य हो और उसके लिए सबसे उपयुक्त धर्मग्रन्थ है- **'वेद'** और धर्म है- **'वैदिक धर्म'**। इस महान् विचार की स्थापना करने के लिए मत-मतान्तरों की उन बातों को उजागर करना आवश्यक था जो मानव जाति की उन्नति एवं एकता में बाधक बन चुकी थीं। महर्षि प्रचार के लिए तीन उपाय अपनाते थे- उपदेश, लेखन और शास्त्रार्थ। महर्षि के सुधारवादी विचार वैदिक शास्त्रीय सटीक तर्कों पर आधारित और इतने प्रबल थे कि उनका कोई उत्तर मतवादियों, पौराणिकों, ईसाइयों तथा मुस्लिम विद्वानों से नहीं बन पाता था। महर्षि के वक्तव्यों से उनमें हड़कम्प मच गया, वे तिलमिला उठे और महर्षि के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के मानवीय लक्ष्य को समझे बिना उनके विरुद्ध भाँति-भाँति के षड्यन्त्र रचने लगे। पौराणिकों की ओर से समय-समय पर होने वाली विषप्रदान, अपमान और आक्रमण की अनेक घटनाओं ने तथा मुसलमानों एवं अंग्रेजों के रोषपूर्ण व्यवहार ने और धमकियों ने महर्षि को अपने विरुद्ध सम्भावित षड्यन्त्रों का आभास करा दिया था। फिर भी महर्षि निर्भय होकर अपने लक्ष्य पर अडिग रहे। वास्तविकता तो यह है कि उनके खण्डन-मण्डन में भी लोकहित ही निहित था। अपने क्रान्तिकारी समाज-सुधार के कार्यों से महर्षि दयानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के सबसे प्रभावशाली और बहु-उद्देश्यीय समाजसुधारक सिद्ध हुए। जबकि ऐसा अन्य कोई समकालीन सुधारक नहीं था।

महर्षि केवल समाजसुधारक ही नहीं थे, वे समाज-हित के लिए सर्वस्व समर्पित करनेवाले परोपकार-प्रिय समाजसेवी भी थे। इसके पोषक अनेक प्रमाण मिलते हैं। आर्यसमाज के दस नियमों में छठा और नौवाँ, दो नियम संसार के उपकार एवं सर्वसमाज की उन्नति करने से सम्बन्धित हैं। परोपकारिणी सभा को भी अपने देहान्त के बाद अपनी जमा सम्पत्ति परोपकार के सुकार्य में लगाने के निर्देश स्वीकार-पत्र में दिये और देखिए इस सभा का नाम भी **'परोपकारिणी'** रखा है। इसका अर्थ यह हुआ कि उपकार करना उनका हार्दिक उद्देश्य था।

महर्षि की अभिलाषा थी कि सर्वस्व त्याग कर और जीवन समर्पित करके उन्होंने जो समाज-कल्याण के कार्यक्रम आरम्भ किये हैं, जैसे- वेदोद्धार, दलितोद्धार, नारी-उद्धार, सर्वशिक्षा-अधिकार, जाति-पाँति उन्मूलन, धर्म-संस्कृति रक्षा, स्वराज्य-प्राप्ति, पाखण्ड-अविद्या-अन्धविश्वास-विनाश, आर्यसमाज का देश-देशान्तर में विस्तार आदि, ये कार्य उनके जीवनकाल के साथ-साथ उनके जीवन के बाद भी निर्बाध रूप से चलते रहें। इसके लिए उन्होंने पहले १० अप्रैल , शनिवार, सन् १८७५ चैत्र शुक्ल पञ्चमी, विक्रम सं. १९३९ को डॉ. मानिक जी का बागीचा, मोहल्ला गिरगाँव, मुम्बई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की। वहाँ के आर्यजनों की सम्मति से इसका नाम **'आर्यसमाज'** रखा गया। आर्यसमाज की स्थापना से महर्षि को इतना आनन्द हुआ कि उसकी अनुभूति से अवगत कराने हेतु महर्षि ने ११ अप्रैल, १८७५ को श्री गोपालराव देशमुख को जानकारी के लिए एक पत्र लिखा जिसमें उनको भी अपने स्थान पर आर्यसमाज शीघ्र आरम्भ करने की प्रेरणा दी। उसके बाद अनेक स्थानों पर आर्यसमाज की स्थापना हुई और उनके माध्यम से महर्षि द्वारा प्रारब्ध

कार्यों को आगे बढ़ाया जाने लगा। आर्यसमाज और उसके कार्यों का सन्तोषप्रद विस्तार होने लगा। महर्षि के प्रभाव और तर्कसम्मत सिद्धान्तों एवं नीतियों के कारण समाज के साधारण से लेकर सुशिक्षित और उच्च वर्ग तक इसकी ओर आकर्षित हुए और यह लोकमान्य संगठन बन गया। उसका प्रमाण यह है कि देश स्वतन्त्र होने के बाद भारत की सरकार ने आर्यसमाज की कई नीतियों को सरकार की नीतियों के रूप में ग्रहण कर लिया था।

आर्यसमाज की स्थापना हो जाने के बाद भी महर्षि ने एक नयी सभा का निर्माण किया जिसका नाम रखा- **'परोपकारिणी सभा'**। महर्षि के जीवनीकार और आर्यसमाज के इतिहास के कुछ लेखकों ने यह प्रश्न उठाया है कि इस सभा के निर्माण की आवश्यकता क्यों हुई? इसके गठन की आवश्यकता को लेकर पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं-''ऋषि दयानन्द की दूरदर्शी दृष्टि अब समीप आते हुए अन्त को देख रही थी। मेरठ से चलते हुए ऋषि ने जो आदेश दिया था, उसके वाक्य बतलाते हैं कि ऋषि दयानन्द भविष्य को देख रहे थे। आपने व्याख्यान में कहा था कि महाशयो! मैं सदा बना नहीं रहूँगा। विधाता के न्याय नियम में मेरा शरीर भी क्षणभंगुर है। ...सोचो, यदि अपने पाँव खड़ा होना नहीं सीखोगे तो मेरे आँख मिचने के बाद क्या करोगे? अभी से अपने को सुसज्जित कर लो। ऋषि के हृदय में यह चिन्ता थी कि मेरे मरने के पीछे समाजों को संभालने वाला कौन होगा?- इन सब बातों पर विचार करके ऋषि ने एक ऐसी सभा का बनाना निश्चित किया कि जो इन त्रुटियों को पूरा कर सके। उदयपुर में परोपकारिणी सभा का विचार उत्पन्न हुआ और पकाया गया। ...ऋषि ने परोपकारिणी सभा के लिए बड़ा भारी प्रोग्राम बनाया था। वे परोपकारिणी को अपना उत्तराधिकारी और आर्यसमाज का रक्षक बनाना चाहते थे (आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ १३१-१३२)

इन आवश्यकताओं को देखते हुए उसी प्रवास में महर्षि ने मेरठ शहर (उत्तर प्रदेश) में परोपकारिणी सभा का प्रथम गठन कर लिया। वहीं १६ अगस्त, १८८० ईसवी को उसकी रजिस्ट्री भी करा ली। उसमें अट्ठारह सदस्य रखे थे जिनमें 'थियोसोफी सोसायटी' से सम्बद्ध कर्नल एच. एस. अल्काट और मैडम एच. पी. ब्लैवैटस्की ये दो विदेशी थे। ये दोनों वैदिक सिद्धान्तों के प्रति आस्थावान् तथा महर्षि के श्रद्धालु होने का दावा करते थे। उसके प्रधान लाला मूलराज (लाहौरवाले) बनाये गये। मेरठ के बाद जब महर्षि सन् १८८३ में उदयपुर पधारे तो उन्होंने सभा का वहाँ पुनः निर्माण किया। उसमें तेईस सदस्य रखे गये और उसका प्रधान उदयपुर के महाराजा श्री सज्जनसिंह को नियुक्त किया। उसकी रजिस्ट्री उदयपुर राज्य में पुनः २७ फरवरी, १८८३ (फाल्गुन कृष्ण पञ्चमी, वि. सं. को उसकी रजिस्ट्री उदयपुर राज्य में कराई गई) वही गठित सभा आज भी कार्यरत है। जिसका कार्यालय एवं स्मारक ऋषि उद्यान में स्थित है।

मेरा मानना है कि **'आर्यसमाज'** यह नाम व्यापक अर्थ में **'वैदिकधर्म'** का ही आधुनिक पर्याय है, क्योंकि वही इसके सिद्धान्त हैं, वही इसका आधार है। किन्तु सीमित अर्थ में यह केवल एक वैदिकधर्मजीवी संगठन बन गया है, जिसके देश-काल-समयानुसार अपने नियम और व्यवस्था है। कोई भी वैदिकधर्मी आर्य हो सकता है और कोई भी आर्य वैदिकधर्मी हो सकता है, किन्तु आर्यसमाजी केवल वही माना जा सकता है, जिसने इस संगठन के निर्धारित नियमों के अनुसार इसकी सदस्यता ग्रहण की हो। आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा के निर्माण की आवश्यकता के विषय पर चिन्तन करते हुए श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति आदि लेखकों ने कुछ बिन्दुओं पर अपना विमर्श प्रस्तुत किया है। उसका सार यह है-

१. आर्यसमाज का गठन धार्मिक एवं सामाजिक 'व्यावहारिक संगठन' के रूप में हुआ है।

२. इसके नियमों में आर्यसमाज के आचरणों का उल्लेख तो है किन्तु आर्यसमाजी होने की बौद्धिक योग्यता का निर्धारण नहीं है।

३. इसके नियमों में वेदों के स्वाध्याय, अध्ययन-अध्यापन का तो विधान है, किन्तु वेदों और वैदिक शास्त्रों के शोधकार्य और उसके प्रकाशन का दायित्व निर्धारित नहीं है, जो कि महर्षि के ग्रन्थों की सुरक्षा और आर्यसमाज की सैद्धान्तिक स्थिरता के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण आधारभूत कार्य है।

४. इसमें इसके संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के बौद्धिक एवं निजी पदार्थों के उत्तराधिकार का उल्लेख नहीं है।

५. इसमें पृथक्-पृथक् स्थानों पर कार्यरत आर्यसमाजों के नियन्त्रण, प्रबन्धन, विवाद-निपटान आदि के लिए कोई एक उच्चाधिकार प्राप्त केन्द्रीय संस्था स्थापित नहीं की गई है।

इत्यादि न्यूनताओं को दूर करने के लिए महर्षि ने परोपकारिणी सभा का निर्माण किया और उसके उक्त अभावपूरक अधिकार, उद्देश्य एवं नियम एक वैधानिक **'स्वीकारपत्र'** द्वारा निर्धारित किये। पाठकों को ज्ञात रहे कि यह सभा विश्व की एकमात्र सभा है जो महर्षि द्वारा निर्मित है और जिसको उन्होंने वैधानिक रूप से अपने **'स्थानापन्न और उत्तराधिकारिणी'** घोषित किया है। सरल कानूनी भाषा में इसको यों समझा जा सकता है कि आर्यसमाज और परोपकारिणी सभा के निर्माता महर्षि को इन संस्थाओं के बारे में निर्णय आदि लेने-देने के जो अधिकार प्राप्त थे, वे इस सभा को भी प्राप्त हैं। इस सभा के उद्देश्यों की पूर्ति कर सकने में सक्षम, योग्य और महर्षि दयानन्द के प्रति आस्थावान् व्यक्ति ही, जो महर्षि द्वारा विहित सिद्धान्तों के प्रति भी निष्ठावान् हों, उनके साथ समझौतावादी न हों, वे इसके सदस्य बनने की अर्हता रखते हैं। इस योग्यता पर नजर रखना कार्यकारिणी का दायित्व है। **'स्वीकार-पत्र'** के अनुसार सभा के सदस्यों की योग्यताएँ निम्नानुसार होनी चाहियें-

१. वेद-वेदांगादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने, प्रचार और व्याख्या करने में सक्षम तथा प्रकाशन की योग्यताधारक आर्य सज्जन।

२. वेदोक्त धर्म के उपदेश, शिक्षा और प्रचार करने में सक्षम आर्यसज्जन। वेदोक्त धर्म का अनुपालक आर्य व्यक्ति। ऐसा न होने पर उसकी सदस्यता से विमुक्ति हो जायेगी।

३. अनाथों, दीनों के संरक्षण, पोषण, सुरक्षा में समर्थ आर्यसज्जन।

४. सभा के हित और स्वीकार-पत्र के नियमों से अन्यथा आचरण न करने वाला व्यक्ति। विरुद्ध आचरण करने पर सदस्यता से विमुक्ति हो जाएगी। ऐसी विमुक्ति स्वामी जी ने अपने जीवनकाल में भी की थी।

सभा के स्थापना के इतिहास को पढ़ने से ज्ञात होता है कि महर्षि ने २३ सुशिक्षित एवं सक्षम सज्जन आर्यजनों को इसका सदस्य नियुक्त किया था। आरम्भ में सभी आर्यसमाजें परोपकारिणी सभा से सम्बद्ध और इसके नियन्त्रण एवं निर्देशन में थीं। सभा के इतिहास से जानकारी मिलती है कि सभी समाजों के प्रतिनिधि सभा के अधिवेशन में उपस्थित होते थे। आर्यसमाज के दिग्गज नेताओं, विद्वानों, संन्यासियों में कोई ऐसा नहीं था जो सभा से किसी-न-किसी रूप में सम्बद्ध न रहा हो। सभा की सर्वोच्च प्रतिष्ठा थी। परवर्ती सदस्यों की शिथिलता और अकर्मण्यता से महर्षि द्वारा प्रदत्त बहुत से अधिकार परोपकारिणी सभा के हाथ से व्यावहारिक रूप से फिसल गये। आर्य नेताओं द्वारा परोपकारिणी से पृथक् स्वतन्त्र सार्वदेशिक सभा तथा राज्य की पृथक् प्रतिनिधि सभाओं का गठन होने के बाद वे अधिकार उनके हस्तगत हो गये। इस अधिकार-अन्तरण से आर्यसमाज की स्थितियों में जो भी अच्छा-बुरा परिवर्तन हुआ उसे हम निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं-

-पृथक् सभाएँ बन जाने से, आर्यों की योग्यता के लिए महर्षि द्वारा परोपकारिणी सभा के अन्तर्गत निर्धारित नियमों/उद्देश्यों से आर्यसमाज और सभाएँ विमुक्त हो गईं। सभाओं ने अपने नियम बनाये जिनका उल्लंघन आर्यजन दलगत स्वेच्छा के अनुसार सहज भाव से करने लगे और आज भी कर रहे हैं। ऐसा वे महर्षिकृत नियमों के अन्तर्गत रहकर नहीं कर सकते थे।

-परोपकारिणी सभा की संरचना स्थायी न्यास के रूप में की गई है, जबकि आर्यसमाजों एवं आर्यसभाओं की संरचना लोकतान्त्रिक चुनावी पद्धति से हुई है। चुनावों की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप समाजों और सभाओं में शासकीय राजनीति घुसपैठ कर गई और उनमें में वे सारे हथकण्डे अपनाये जाने लगे जो शासकीय राजनीति में अपनाये जाते हैं। उसका दुष्परिणाम यह सामने आया कि आर्यों के समाज एवं सभाएँ उस कलह और फूट का शिकार हो गई हैं, जिसकी महर्षि ने 'सत्यार्थप्रकाश' में राजरोग कहकर भर्त्सना की है। परोपकारिणी सभा की

न्यासीय संरचना के अन्तर्गत ऐसी विकृत स्थिति आने की सम्भावना नहीं थी।

–पं इन्द्र विद्यावाचस्पति ने एक अन्य बिन्दु की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि आर्यसमाजों/सभाओं के सभासदों/अधिकारियों के लिए बौद्धिक योग्यता परिभाषित न करने के कारण उनके अधिकारियों/ सभासदों द्वारा सभाओं में विद्वानों की उपेक्षा की गई, जिसके कारण उनमें केवल व्यावहारिक पुरुषों की प्रधानता हो गई। सभाओं के पास शास्त्र और धर्म व्याख्याता मार्गदर्शक नहीं रहे। प्राय: समाज एवं सभाएँ स्तरहीनता की शिकार हो गईं। अपने आरम्भिक काल में आर्यसमाज से प्रत्येक वर्ग के उच्चस्तरीय बुद्धिजीवी, संन्यासी, नेता, धनी–मानी, कार्यकर्ता जन जुड़े हुए थे, आज यह मध्यमस्तरीय लोगों का संगठन बनता जा रहा है। यद्यपि उस अभाव की भरपाई करने का प्रयास कुछ दूरदर्शी अधिकारियों ने 'विद्यार्य सभा' का गठन करके किया किन्तु वह सभा भी लुप्त हो गई। जब–जब भी उसको अस्तित्व में लाया गया तब–तब उसको गौण बना कर कार्यकारिणी के आधिपत्य के नीचे दबाया जाता रहा।

अन्त में एक अन्य बिन्दु भी चिन्तनीय है। महर्षि ने आर्यसमाज का निर्माण लोकतान्त्रिक चुनावी पद्धति से किया था, किन्तु सन् १८८३ तक आते–आते उनकी विचारधारा में एक बड़ा परिवर्तन यह आया कि उन्होंने उस पद्धति को त्यागकर परोपकारिणी सभा के लिए न्यास–पद्धति को ग्रहण किया। तो क्या उन्होंने आर्यसमाजों के खट्टे–मीठे अनुभव के बाद न्यास–पद्धति को अधिक ग्राह्य मान लिया था? और यदि वे जीवित रहते तो क्या आर्यसमाज में भी न्यास–पद्धति को क्रियान्वित कर देते? क्योंकि महर्षि का यह इतिहास रहा है कि उन्होंने जिस किसी बात को असत्य, अनुचित या अनुपयोगी अनुभव किया उसको तत्काल त्याग कर सत्य, उचित और उपयोगी को ग्रहण कर लिया। **डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र–व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानु:	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित–पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:–

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम – **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष – 0145-2460120**

बैंक का नाम – **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या – **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

प्रवचनमाला-६२

मृत्यु सूक्त-४८

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
आनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे।।

हम ऋग्वेद के दशम मण्डल के १८ वें सूक्त के सातवें मन्त्र पर चर्चा कर रहे हैं। इसका देवता पितृमेध है, इसका ऋषि यामायनः है और इस मन्त्र में एक की मृत्यु होने पर दूसरा क्या करे, कैसा रहे, यह बात बताई गयी है। हमने पहले देखा कि हमारे समाज में इस मन्त्र का कुछ गलत अर्थ करके सिद्धान्त को अपने पक्ष में करने का यत्न किया गया। इसका जो मूल कारण है, यदि उस मूल कारण पर हम विचार करें तो हमें यह समझ में आ जायेगा कि वेद जो कह रहा है वह सहज है, स्वाभाविक है, उचित है और जो हम बलात् करना चाहते हैं वह अनुचित है। इस दृष्टि से हम विचार करके देखें कि मध्यकाल में वेद के इस आदेश को क्यों नहीं स्वीकार किया गया? **वेद तो कहता है कि जो मैं ज्ञान दे रहा हूँ उससे तुम संसार को समझो, उससे व्यवहार करो, तुम उन नियमों का पालन कर उनका लाभ उठाओ।** लेकिन हमने क्या किया? हमने दूसरों के वेद पढ़ने पर प्रतिबन्ध ही लगा दिया। वेद पढ़ने पर जो प्रतिबन्ध लगाया वह केवल वेद पढ़ने से नहीं था, वेद पढ़ने का अभिप्राय है हमारे ज्ञानवान् होने से।

हमारी संस्कृति में शिक्षा का प्रारम्भ जिससे होता है, उस संस्कार का नाम वेदारम्भ संस्कार है। हमारे जीवन में वेद शिक्षा का प्रयोजन है अर्थात् हमारे विवेक का। अच्छे-बुरे को समझने की योग्यता, वह जहाँ से प्राप्त होती है वह हमारा वेद है और उस पर जब हम प्रतिबन्ध लगा देते हैं तो हमारा विवेक समाप्त हो जाता है। क्योंकि मनुष्य के पास जितना भी ज्ञान है, जितना हो सकता है उसमें स्वाभाविक ज्ञान बहुत कम है। हमारे पास सब अर्जित है। हम कहीं देखकर, कहीं सुनकर, पढ़कर धीरे-धीरे जानकारी जोड़ते हैं और उस जोड़ने से हमारा ज्ञान बढ़ता है। जब अपने ज्ञान के स्रोत ही आप बन्द कर देंगे, उसे अपने पास तक पहुँचने से रोक देंगे, तब आपके अन्दर इस नैमित्तिक ज्ञान से जो चीजें आनी चाहिएं, वे आ ही नहीं सकतीं। इसलिये मध्यकाल के लोगों ने समाज को कमजोर और दास बनाने के लिये जो सबसे बड़ा प्रयत्न किया, वह था मनुष्य को ज्ञान से दूर रखने का प्रयत्न और इसलिए उन्होंने कहा कि स्त्री और शूद्रों को वेद नहीं पढ़ना चाहिए।

हमने अन्ततोगत्वा वेद पढ़ने पर यह प्रतिबन्ध लगाया क्यों? वेद को हमने क्यों लोगों से दूर कर दिया? उसका कारण एक ही है कि जो मनुष्य बुद्धिमान् हो जाएगा, जो मनुष्य समझदार हो जाएगा, जो ज्ञान प्राप्त कर लेगा वह कभी किसी के आधीन नहीं होगा। उसको अच्छे और बुरे का विवेक हो जाता है। अपने हित-अहित के बारे में वह सोचता है, सोच सकता है और ऐसी स्थिति में वह दूसरे का कहा हुआ करने के लिए बाध्य नहीं होता। वह दूसरे के आदेश-निर्देश को आँख बन्द करके स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। इसलिए मध्यकाल में जो दुर्बल लोग थे, जो कुछ स्वार्थी लोग थे, अदूरदर्शी लोग थे उन्होंने समाज में बहुत बड़े वर्ग पर अध्ययन का प्रतिबन्ध लगा दिया। इससे वह वर्ग निश्चित रूप से ज्ञानहीन, विवेकहीन हो गया और शेष के लिए आपने शूद्र कहकर उनको विद्या से विमुख करा दिया। जहाँ ७५ प्रतिशत लोग अनपढ़ हों, पढ़ने के अधिकार से वंचित हों आप उस समाज की

उन्नति, विकास की यात्रा कैसे चला सकते हैं? यही हमारी पराधीनता का कारण रहा, यही अज्ञान, यही अविवेक हमारी समृद्धिहीनता का कारण रहा, यही हमारी दुर्दशा का हेतु बना। हमने स्वार्थ के लिए दूसरों के विवेक को बनने से, बढ़ने से रोक दिया।

जब हम रोक देते हैं तो दूसरे को अपने अनुसार चलने के लिए बाध्य कर सकते हैं। यदि हम दूसरे को समझदार बना दें, विवेकशील और योग्य बना दें तो फिर उसके साथ मनमानी नहीं कर सकते, स्वेच्छाचारिता नहीं कर सकते। इसलिये हमने प्रयत्न करके अपने समाज के अधिकांश लोगों को मूर्ख रखने का, बनाने का यत्न किया और इसका दण्ड समाज को आज भी भोगना पड़ रहा है। आज भी महिलाओं के साथ जो अन्याय हो रहा है, उसका मूल कारण अज्ञान, अविद्या है ही और उससे बड़ा कारण है स्वार्थ। हम अन्याय करने के लिए कैसे विवश हो जाते हैं, इसे आप यूँ देख सकते हैं कि आपने दोहरे मानदण्ड अपना रखे हैं। आप अपने यहाँ पुरुष होने को गौरवपूर्ण मानते हो, आप लड़का होने को भाग्य मानते हो और लड़की होने को दुर्भाग्य मानते हो। एक बार एक विद्वान्, विश्वविद्यालय के अध्यापक कहने लगे, हिन्दुओं में पुत्र शब्द का बड़ा महत्त्व है, जिसके पास पुत्र नहीं है वह इस संसार-सागर को पार नहीं कर सकता, वह नरक से पार नहीं जा सकता। नरक से बचने के लिए हमें पुत्र सन्तान की आवश्यकता है। जब वह यह बहुत सारी लम्बी चर्चा कर रहे थे और इसके माहात्म्य को समझा रहे थे, तो मैंने उस महानुभाव से एक प्रश्न किया कि पुत्र शब्द का अर्थ तो चलो ठीक है, आपने बताया, कि **पुम्** कहते हैं नरक को और **'त्र'** कहते हैं बचाने को। इस पुम् नाम नरक से जो बचाता है, जो दु:ख दारिद्र्य से हमें मुक्त करता है, बीमारी में हमारी सेवा करता है, कष्टों से हमें बचाता है, इसलिए हम उसे पुत्र कहते हैं। पुम् नाम नरकात् त्रायते इति पुत्र:। नरक क्या है-बुढ़ापा है, बीमारी है, अभाव है, असुविधा है। ये सब चीजें हमें नरक में ही तो ले जा रही हैं। इनसे बचाने के लिए कौन होगा-जो साथ देगा, जो पास का होगा, निकट सम्बन्धी होगा। तो इसलिए पुत्र को इन सबसे मुक्त कराने वाला माना गया है। लेकिन इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जो हमारी पुत्री है वह गौण है। जहाँ तक शब्द का प्रश्न है, पुत्र जिस अर्थ को दे रहा है, पुत्री भी उसी अर्थ को देगी, क्योंकि पुत्र कहते हैं पुम् नाम नरक से बचाने वाले को और पुत्री कहेंगे पुम् नाम नरक से बचाने वाली को। अर्थात् दोनों में बचाने की क्षमता है। इसलिए आप जो यह ऊँचा-नीचापन करते हैं कि पुत्र बड़ा होता है और पुत्री उसकी तुलना में तुच्छ होती है- यह चिन्तन, सोच मिथ्या है, गलत है, अनुचित है। हमारी इस सोच के कारण हम पुत्रियों को निम्न मानने लग गए और इनको वश में रखने के लिए हमने एक विधान बना लिया कि इनको शिक्षा से वंचित रखा जाए और आज जब शिक्षा मिलने लग गई है तो अब परिणाम भी आपके सामने अनुकूल आने लगे हैं।

जिनके पास शिक्षा नहीं हो, जानने का अवसर ना मिले तो निश्चित रूप से उनके सामने दु:ख-संकट तो आयेंगे ही आयेंगे, क्योंकि दु:ख तो अज्ञान के परिणामस्वरूप होता है। यदि ज्ञान हो जाए तो आदमी उन कारणों को स्वत: दूर कर लेता है, जहाँ से दु:ख की सम्भावना हो। हमें पता है कि यहाँ साँप, बिच्छु या काँटा है तो हम उससे बचकर निकलते हैं या उसका उपाय करके निकलते हैं और जानकारी न होने की दिशा में हम न उपाय कर सकते, ना बचकर निकल सकते। वैसे ही हमारे पास यदि उचित जानकारी है तो हम दु:ख, दुर्घटनाओं से बच सकते हैं और यही हम पूरे इतिहास में देखते हैं। क्योंकि जो भी संकट को झेलता है उसका सबसे बड़ा यह कारण है कि उसके पास जानकारी का अभाव है, वह ज्ञान से वंचित है और इसीलिए दु:ख से बँधा हुआ है। इसलिए हमें सबसे पहले जो ज्ञान से वंचित लोग हैं, उनको ज्ञानवान् बनाना चाहिए। हमारे ऋषियों ने इसलिए सबको बराबर ज्ञान का अधिकार दिया है। जब सबको ज्ञान का अधिकार दिया है, इसलिए यह सोचना कि महिलाओं को ज्ञान का अधिकार नहीं है, यह अनुचित है। कोई व्यक्ति जब ज्ञानवान् नहीं होता तब उसकी दो परिस्थितियाँ होती हैं। ऐसा व्यक्ति परवश हो जाता है, पराधीन हो जाता है, वह दूसरे की व्यवस्था पर, आदेश पर, निर्देश पर निर्भर करने लगता है इसलिए अपने यहाँ परिभाषा ही यही दी है-**सर्वं परवशं दु:खं, सर्वम् आत्मवशं सुखम्। एतद् विद्यात् समासेन**

लक्षणं सुख दुःखयोः।।

कहा कि इस संसार में यदि कोई सुखी है, कोई दुःखी है तो इसकी एक ही कसौटी है-जो कुछ आपको दूसरे के आधीन रहकर करना पड़ता है, दूसरों को अनुकूल बनाकर करना पड़ता है, अपनी इच्छा के विरुद्ध करना पड़ता है, वह सब दुःख है और जो अपने आधीन है, अपने अधिकार में है, जब चाहे, जैसा चाहे कर सकता है, वही सुख है। यह हमारे विद्वानों ने सुख-दुःख का लक्षण किया है। हमारे वश में तब नहीं होता जब हमारे ज्ञान में नहीं होता, ज्ञान में होना हमारे वश में होने के लिए आवश्यक है। हमने अपनी पीढ़ियों को ज्ञान से वंचित किया है और उसका परिणाम हम देखते हैं कि थोड़ा-बहुत किसी के पास यदि ज्ञान आता है तो समझ अपने आप आती है और जिनके पास ज्ञान नहीं है वे दुनिया में दुःखी होते हैं। यहाँ पर जो मूल बात हमारे समझने की है कि संसार के दुःख अज्ञान से आते हैं, विशेषरूप से हमारे जो घर के दुःख हैं वे हमारे अज्ञान के कारण ही हुए और हमारे घर में जो पात्र जिस विषय में जितना कम जानता है या कम जानकारी दी गयी है वह उतना ही अधिक दुःख झेलता है।

इसलिये वेद यह कहता है कि मनुष्यता नहीं है कि हम किसी को ज्ञान से वंचित रखें, विवेक के अधिकार से शून्य करें। अतः मन्त्र में एक बात की ओर विशेष रूप से इंगित किया गया है कि व्यक्ति निर्णय करने के योग्य होना चाहिए अर्थात् **महिला को आत्मनिर्णय का पूर्ण अधिकार है और इस आत्मनिर्णय के अधिकार को व्यक्त करने के लिए यह मन्त्र इन शब्दों का उपयोग कर रहा है।** इन मन्त्रों में स्त्री के आत्मनिर्णय के अधिकार की ध्वनि आती है और कहा गया **अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे।** उनके अकेले होने से, विधवा हो जाने से उनके अस्तित्व का संकट नहीं है। उनके ज्ञान की, बुद्धि की अनुपयोगिता है ऐसा नहीं है। वह संसार के लाभों से वंचित हो, ऐसा नहीं है। उन्हें उसी तरह से लाभान्वित होने का अधिकार है, जैसे वे जीवित पति के सामने थीं। तो इस दृष्टि से इस मन्त्र के जो शब्द हैं, कि संसार में जीवित मनुष्य का जो अधिकार है, उसके जीवित रहते बना ही रहता है। उसके साथी के मर जाने से कोई उसके अधिकारों का हनन नहीं कर सकता। साथी के मरने से उसे मरा हुआ नहीं माना जा सकता। उसके मौलिक जो अधिकार हैं आत्मनिर्णय के, विवेक के, वे सदा ही बने रहने चाहिएं। वे तभी बने रहे सकते हैं जब वे ज्ञानवान् हों, जो वेद का तत्त्वार्थ जाननेवाला होता है उसे लाभ-हानि मालुम होती है। उसके लिए क्या हितकर है, क्या अहितकर है यह वह जानता है। मन्त्र में महिला के आत्मनिर्णय के अधिकार की बात है कि जब तक वह जीवित है, जीवित रहते हुए जो भी उसके लिए उचित है वह करने का उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

२६ व २७ फरवरी २०२०	–	परोपकारिणी सभा का स्थापना दिवस
१७ से २४ मई २०२०	–	आर्यवीर दल शिविर
३१ मई से ०७ जून २०२०	–	आर्यवीरांगना दल शिविर
१४ से २१ जून २०२०	–	योग साधना स्वाध्याय शिविर
०४ से ११ अक्टूबर २०२०	–	योग साधना स्वाध्याय शिविर
०६ अक्टूबर २०२०	–	डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला
२० से २२ नवम्बर २०२०	–	ऋषि मेला (१३७वाँ बलिदान समारोह)

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

'स्वतन्त्र कर्त्ता' का वैदिक सिद्धान्त- आर्यसामाजिक कहे जाने वाले पत्रों में कुछ भाई नियमित रूप से लिखते हैं। पढ़े-लिखे भाई जो किसी भाषा का अच्छा ज्ञान रखते हैं उनके पास शब्दों की क्या कमी है। बहुत से लेखों को प्राय: शब्दजाल का ही चमत्कार पाकर निराशा होती है। ऐसे उत्साही सज्जन अपने लेख की प्रतिलिपि देशभर में सब पत्रों को भेज देते हैं। यह आर्यसमाज की बौद्धिक कंगाली का प्रमाण है। कोई गौरव की बात नहीं है। श्री धर्मवीर जी ने ऐसे प्रतिलिपिकृत लेखों पर कड़ी रोक लगाकर परोपकारी की प्रसार-संख्या व आर्यसमाज के गौरव को बढ़ाकर एक इतिहास रचा। उनसे पहले परोपकारी चार- पाँच सौ प्रतियाँ ही तो छपता था।

देशभर में दूरदर्शन तथा समाचार पत्रों में नवीन वेदान्त के प्रभाव से यह विचार दोहरा-दोहरा कर दिया जा रहा है कि जीव ब्रह्म का अंश है। जो कुछ करता है सब ईश्वर ही करता है। ईसाई-मुसलमान शैतान विषयक अपनी फिलॉसफ़ी के कारण पाप करवानेवाला जीव को नहीं शैतान को मानते हैं। शैतान को बनानेवाला भी तो भगवान् है, सो पाप-कर्मों को करवानेवाला भी तो परमात्मा ही ठहरा! श्री डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी, डॉ. ज्वलन्त जी, डॉ. वेदपाल जी की कोटि के लेखक तो गिनती के ही हैं।

आर्यसमाज ने पूरी शक्ति से इस दुष्प्रचार का प्रतिकार करने के लिए कोई आन्दोलन छेड़ा क्या? हम संसार को यह न बता सके कि भले ही वाणी से पूरा विश्व यही मान रहा है कि सब कुछ ईश्वर ही करता है, परन्तु हृदय से संसार के सब विचारक, प्रशासक तथा विश्वभर की न्यायपालिका ऋषि की छाप को स्वीकार कर चुकी है।

महर्षि दयानन्द फैल चुका है- ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में 'स्वतन्त्र कर्त्ता' सूत्र का जयघोष लगाया, ''जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है, वही कर्त्ता है।'' पूर्व-पश्चिम के और भारत के भी प्रत्येक कोर्ट-न्यायालय में स्वतन्त्रकर्त्ता सिद्ध होने पर किसी अपराधी को फाँसी तक का दण्ड दिया जाता है। मुझसे शैतान ने पाप करवाया अथवा ''करे कराय आपे आप'' कहकर कोई भी दण्डमुक्त कहीं नहीं किया गया। क्या यह ऋषि की गहरी व व्यापक छाप नहीं है? सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका में ही महर्षि यह लिखते हैं कि जीव हठ, दुराग्रह, अविद्यादि दोषों तथा अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये असत्य में झुक जाता है।

कहीं भी न्यायालय गोली चलाने के कारण सिपाही को पापी या दोषी मानकर दण्डित नहीं करता। आदेश देनेवाले बड़े अधिकारी को ही उत्तरदायी माना जाता है। एक मुसलमान कवि का प्रसिद्ध पद्य है-

ख़ूब हंसी आती है मुझे हज़रते इंसान पर
फ़ेले बद (पाप) तो ख़ुद करे, लानत करे शैतान पर।

यह पद्य कवि का इस्लाम के विरुद्ध विद्रोह नहीं तो क्या है? मानना पड़ेगा कि नमाज़ी कवि के हृदय में महर्षि दयानन्द घुस गया है। आर्यो! यह है आज के युग में महर्षि की विलक्षणता! बौद्धमत जीव को अथवा जीवन को नदी के जल-प्रवाह सदृश मानता है। जिस जल में व्यक्ति इस क्षण डुबकी लगाता है अगले क्षण उसका स्थान नया जल ले लेता है। किसी भी बौद्ध देश में बौद्ध न्यायाधीश द्वारा दण्डित किये जाने पर यह तर्क देकर स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का किसी ने यत्न नहीं किया कि जिसने हत्या की, पाप किया, अपराध किया, मैं वह नहीं हूँ, वह तो प्रवाहित हो गया। मैं नया व्यक्ति हूँ।

विश्व में महर्षि की यह दिग्विजय पं. लेखराम वंश की सतत साधना का फल है। यह आर्यसमाज के गगनचुम्बी भवनों, सम्पदा तथा संस्थावाद का फल नहीं है।

यह मनगढ़न्त इतिहास- आर्यसमाज की कभी ऐसी धाक थी कि पंजाब के मुरण्डा कस्बे में एक मुसलमान फ़तवा का शिकार हो गया। दण्ड से बचने के लिये वह आर्योपदेशक पं. रामनाथ के पास आया कि मुझे कुरान, हदीस का कोई ऐसा प्रमाण बताओ जिससे मैं स्वयं को निर्दोष सिद्ध करके दण्ड से बच जाऊँ। सचमुच ही वह निर्णय के अन्तिम दिन आर्य विद्वान् के प्रमाण से बच गया।

अब आर्यसमाज में सत्य व तथ्य को रौंद कर मनगढ़न्त लेखों व इतिहास के कारण सत्य व इतिहास रौंदा जा रहा है। लाला लाजपतराय जी ने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट व प्रबल शब्दों में लिखा है कि मेरा वीर अजीतसिंह के कृषक-

आन्दोलन से कुछ भी लेना-देना नहीं था। लालाजी के साथ महाकवि फ़लक तथा क्रान्तिकारी आनन्द किशोर मेहता तथा श्री अलगूराय शास्त्री तथा हमने भी लालाजी पर लिखे अपने ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है।

परन्तु एक नये इतिहासप्रेमी के लेख को दिखाकर किसी ने हमसे पूछा, ''यह भाई तो लिखता है कि लालाजी इस आन्दोलन के एक अग्रणी नेता थे?'' मैं उसे क्या उत्तर देता? अगले ने प्रश्न पूछा था तो लालाजी के जीवनकाल में उसी कालखण्ड में उन पर छपे एक प्रामाणिक ग्रन्थ को उसके सामने रखकर कहा, ''अब कहिये मैं कुछ कहूँ अथवा सन्तुष्टि हो गई?''

हमने कहा, ''भाई इतिहास-प्रदूषण भी एक कला है।'' उसने एक प्रश्न और पूछ लिया, ''क्या लाला लाजपतरायजी ने कोलकाता से कुछ परीक्षायें पास कीं?'' उसे कहा, ''भाई लालाजी की आत्मकथा अंग्रेजी, हिन्दी अथवा उर्दू में कहीं से खोजकर देख ले। मेरी अल्पमति में यह भी मनगढ़न्त रिसर्च है। अब इतिहास-प्रदूषण और आर्यसमाज विषय पर दो-तीन खण्डों में एक ग्रन्थमाला देने का सुझाव आया है। इसके छपते ही हड़कम्प सा मच जायेगा।'' अरे भाई अल्पज्ञता से, अञ्जाने से हममें से हर कोई भूल कर सकता है, परन्तु यह कौन मानेगा कि एक आठ वर्ष का शिशु लम्बी यात्रा करके महर्षि से भेंट करने आया। ऋषि से विचार-विमर्श करके वह तृप्त हो गया और ऋषि भी गदगद हो गये। एक ने जन्म लेते ही ग्रन्थ लिख डाला और छपवा दिया।

एक लेखक जी ने एक ग्रन्थ में एक प्रसिद्ध व्यक्ति का सन् १८६५ में जन्म होना लिखा है और एक दूसरी पुस्तक में उसी को १८४५ में जन्मा बताया है और यदि हमारे जैसा कोई व्यक्ति ऋषि दयानन्द के कथन को प्रामाणिक मानता है तो वही व्यक्ति महर्षि दयानन्द से बहुत पहले जन्मा था। हमारी सबसे विनती है कि जानकारी के स्रोत का पता न देने वाले पौराणिक शैली के साहित्य से भ्रमित न हुआ करें।

लाला लाजपतराय का जन्मदिवस बीत गया- देशप्रेमी नागरिकों को न जाने क्या हो गया है कि नित्यप्रति देश में घटित होनेवाली, देश को अपमानित करनेवाली प्रत्येक घटना पर देशवासी मूक दर्शक बने रहते हैं। कोई भी बोलता नहीं। इसके लिये सब राजनैतिक दल तथा सभी नेता दोषी हैं। सब दलों के नेता प्रायः एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर बोलते रहते हैं।

१. कौन नहीं जानता कि स्वराज्य-संग्राम में सबसे पहले बलिवेदी पर प्राण चढ़ाने का गौरव जिस भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष को प्राप्त हुआ वे लाला लाजपतराय थे। उनका बलिदान-पर्व निकल गया। तब न पक्ष के और न विपक्ष के किसी नेता ने उनको श्रद्धासुमन कहीं अर्पित किये। उनके पश्चात् नेताजी सुभाष को मातृवेदी पर जीवन भेंट करके बलिदान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कांग्रेस के प्रधान बने। किसी और नेता को बलिदान देने का गौरव प्राप्त नहीं हो सका। राहुल ने भी लाला लाजपतराय के जन्मदिवस पर बोलने का उपवास रखा तथा प्रधानमन्त्री व केजरीवाल आदि सबका मौनव्रत एक लज्जाजनक दुःखद दुर्घटना है। हम और क्या कह सकते हैं।

३. लाला लाजपतराय तथा वीर अजीतसिंह देश के स्वराज्य-संग्राम में निष्कासित होने वाले पहले दो नेता थे। इनमें भी लालाजी को पहले निष्कासित किया गया। नौ मई का दिन भी बीत गया। किसी नेता का मौन न टूटा। क्या यही राष्ट्रप्रेम व देशभक्ति है?

४. स्वामी श्रद्धानन्द जी ने नंगी संगीनों से सीना अड़ाया। उस अद्भुत शौर्य का शताब्दी वर्ष बीत गया। पिंजरे में बन्द किये (गुरु के बाग मोर्चा में) गये स्वामी श्रद्धानन्द का शौर्य शताब्दी वर्ष भी अप्रैल २०२० में बीत जावेगा। एक भी नेता ने उनके प्रति श्रद्धासुमन अर्पित नहीं किये और जलियाँवाला बाग़ रक्तिम-काण्ड पर किस दल ने डॉ. सत्यपाल, श्री महाशय रत्तो आदि वीरों-शहीदों की याद में शताब्दी पर्व मनाया? हमें दुःखी हृदय से कहना पड़ता है कि आर्यसमाज ने भी उनके जीवन का परिचय देते हुये कुछ न किया। यह सेवक शौर्य शताब्दी वर्ष पर कई अनूठी पुस्तकें भेंट कर सका। हमें यह सन्तोष है।

'अनादि नाद' ग्रन्थ का प्रकाशन- हमें आर्यजगत् के सजीव समाज-सेवकों को यह शुभ सूचना देते हुये अत्यन्त गौरव की अनुभूति हो रही है कि दिल्ली का आर्यसमाज नयाबाँस अपनी शताब्दी मना रहा है। इस समाज का स्थापना शताब्दी पर्व इसके सभासदों के लिये ही नहीं आर्यसमाज के लिये एक अविस्मरणीय पर्व बनना चाहिये। कारण? इसके मन्दिर की आधार-शिला देश-धर्म-हित तिल-तिल जलनेवाले भाई परमानन्द जी की कोटि के विचारक और बलिदानी ने रखी। वैसे इसकी स्थापना महान् श्रद्धानन्द के शौर्य शताब्दी वर्ष सन् १९१९ में ही हो गई थी।

इस समाज से प्रो. रामसिंह जी, पं. इन्द्र जी, पं. क्षितीश जी वेदालङ्कार, महात्मा आनन्द भिक्षु सरीखी तपस्वी विभूति जैसे हमारे कई नररत्नों का अटूट सम्बन्ध रहा है। यह आर्यसमाज अपनी शताब्दी के पर्व पर 'अनादि नाद' नाम का एक पठनीय, स्मरणीय ग्रन्थ भेंट करने जा रहा है। इसमें आर्यसमाज नयाबाँस तथा आर्यसमाज के इतिहास पर तो दुर्लभ सामग्री होगी ही इसके अतिरिक्त कई (documents) दस्तावेज़ जो अब दुर्लभ हो चुके हैं- वे इस ग्रन्थ में हम दे रहे हैं। पूज्य भाई परमानन्द जी के पहले अभियोग के समय कोर्ट की एक पेशी का दुर्लभ वृत्तान्त पहली बार खोजकर हम दे रहे हैं। 'रंगीला रसूल' अभियोग पर पं. चमूपति जी महाराज का झकझोरने वाला लेख भी हमने दिया है।

हमने अपने पूज्य पूर्वजों के धर्म, दर्शन, अध्यात्म पर कई अत्यन्त मौलिक दुर्लभ लेख इसमें दिये हैं। प्रभु के नित्य अनादि ज्ञान वेद की महिमा को जानने के लिये इस अद्‌भुत शताब्दी ग्रन्थ 'अनादि नाद' की धड़कते दिलों से प्रतीक्षा कीजिये। आर्य-धर्म आर्यसमाज, वैदिक आस्तिकवाद पर कई फड़कते गीत व रचनायें भी इसमें मिलेंगी। हमने इस ग्रन्थ को मात्र एक कर्मकाण्ड पूरा करनेवाली स्मारिका नहीं बनाया। हृदय उंडेलकर, मन और मस्तिष्क को जोड़कर अत्यन्त परिश्रम से इसका सृजन किया है। पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा नारायणस्वामी जी, पं. चमूपति जी, पं. रामचन्द्र देहलवी के तप, त्याग व कीर्ति की गन्ध इसके एक-एक पृष्ठ व पंक्ति से पाकर आर्यजन आनन्दित होंगे।

हमने मुखरित किया है- आर्यसमाज गुण, कर्म व स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था मानता है। यह व्यक्तियों का निर्माण करके समाज का निर्माण करता है। आर्यसमाज के इतिहास में, आर्यसमाज मन्दिरों में यज्ञ-व्यवस्था, दरियाँ बिछाने वाले और झाड़ू लगानेवाले सेवकों का भी ऐतिहासिक योगदान है जिसे किसी ने कभी मुखरित नहीं किया। पहली बार आर्यसमाज नयाबाँस के इस शताब्दी ग्रन्थ में हमने समाज के सेवकों के ऐतिहासिक योगदान को मुखरित किया है। इस समाज के एक भक्तहृदय ऋषिभक्त, स्वाध्यायप्रेमी मिशनरी सेवक श्री चन्दनसिंह सेवा करते-करते विद्वान् मिशनरी व संन्यासी बनकर आर्यो के पूज्य बन गये। हमने उनको ख़ूब देखा।

इसी आर्यसमाज की वर्षों सेवा करनेवाले श्री अंगद आर्यजी आज दिल्ली के एक आर्यसमाज के संस्थापक प्रधान हैं। यह नयाबाँस वालों की ही उपलब्धि नहीं। यह एक-एक आर्य के लिये अभिमान का विषय है।

इसी 'अनादि नाद' ग्रन्थ के साथ-साथ पटियाला राजद्रोह अभियोग के नरनाहर वीर खण्डू सैनी (पटियाला के समाज के सेवक) की प्रेरणाप्रद कहानी या जीवनी छप कर आ रही है। उस स्वतन्त्रता सैनिक खण्डूवीर के हमारी अगली पीढ़ियाँ गौरव गीत गायेंगी। ऐसी हमें आशा है। यह साहित्य की अभिवृद्धि का नूतन इतिहास होगा।

श्री विकास आर्य के प्रश्न- श्री अमित तथा श्री विकास आर्य हरियाणा के दो कर्मठ मिशनरी युवक श्री अभय आर्य के सक्रिय सहयोगी यहाँ मिलने आये। दोनों ने कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर देने की माँग की। जो निरन्तर स्वाध्याय करेगा उसके प्रश्न भी गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण ही होंगे। श्री विकास ने तड़प-झड़प में यदा-कदा छपनेवाले प्रेरक प्रसंगों की शैली की विशेषता का प्रश्न उठाया और दोनों ने पूछा, ''यह लेखन शैली आपने कहाँ से सीखी? इस कला को आपने कैसे विकसित किया?'' इस प्रश्न का उत्तर उन्हें क्या दिया? यह तो आज यहाँ नहीं दिया जावेगा? इसको अहंकार पूजा न समझ लिया जावे? 'जीवनयात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' ग्रन्थ के प्राक्कथन में जिज्ञासुजन को इसका उत्तर मिलेगा। वहाँ अवश्य पढ़ें। इससे व्यक्ति व समाज का विशेष हित होगा।

दोनों का एक प्रश्न था कि छोटे-बड़े, ज्ञात-अज्ञात धर्मरक्षक वीरों पर आप हृदयस्पर्शी प्रेरक प्रसंग लिखते हैं। ''आपके पास प्रभु की यह विशेष देन है। यह कब से लिख रहे हैं? यह किससे सीखा?'' यह प्रश्न सुनकर सेवक फड़क उठा और कहा, ''लाला सन्तलाल जी विद्यार्थी सम्पादक रिफ़ॉर्मर पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के बड़े भक्त थे। उनके बारे में उनके बहुत रोचक शिक्षाप्रद संस्मरण थे। सन् १९५८ में दैनिक प्रताप में हिन्दी सत्याग्रह के कई उत्साही वीरों पर 'बलिदान यज्ञ की चिनगारियाँ' मेरी लेखमाला आपने तब सुरुचि से पढ़ी। प्रिं. रामचन्द्र जी जावेद के निवास पर बहुत स्नेह से भावुक होकर मुझे कहा, पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की यदा-कदा छपनेवाली आर्यसमाज की चिनगारियाँ लेखमाला के पश्चात् अब आपकी चिनगारियों का युग आ गया। इसे पाठक पढ़ा करेंगे।''

अनुभवी सम्पादक विद्यार्थी जी के इस कथन में श्री

विकास व अमित जी के प्रश्न का उत्तर आ गया। निर्विवाद रूप से हमने यह कला गुरुवर इतिहासज्ञ स्वामी श्री स्वतन्त्रानन्द जी महाराज से सीखी या पाई है। यह उनकी देन है, उनसे क्या-क्या सीखा? क्या-क्या पाया? इसकी खोज-पड़ताल करना भविष्य के इतिहासकार का काम है। हम तो प्रत्यक्ष में आज यही कह सकते हैं कि देश-विदेश के गुणी पाठक आज एक स्वर से कहते रहते हैं, ''हम सबसे पहले कुछ तड़प-कुछ झड़प को पढ़ते हैं। हैदराबाद के एक लोकप्रिय पत्रकार ने माननीय डॉ. विजयवीर जी से कहा, ''पं. नरेन्द्र जी के अप्रकाशित प्रेरक-प्रसंग कहाँ से मिल सकते हैं?'' विजयवीर जी का उत्तर था कि आपको इस कार्य के लिये अबोहर जाना पड़ेगा। जिज्ञासु जी लिखित श्री पं. नरेन्द्र जी का जीवन-चरित्र आप पढ़ चुके। वह आपको और भी पर्याप्त अप्रकाशित प्रसंग दे सकते हैं।'' महाराज स्वतन्त्रानन्द जी से बहुत कुछ सीखा। हमारा रोम-रोम उनका ऋणी है।

बड़ों की बड़ी बातें- लोकतन्त्र में मतभेद और कभी विरोध-मनमुटाव हो ही जाता है। हाँ! मतभेद देश, धर्म, जाति व समाज के लिये अति घातक है। आर्यसमाज के निर्माता भी पहले यदाकदा भिड़ ही जाते थे, परन्तु उनके बड़प्पन व परस्पर प्रीति को संसार जानता है।

पूज्य महाशय कृष्ण जी मुझे जानते, पहचानते व प्यार करते थे। मेरे लेखों को ध्यान से पढ़ते व मार्गदर्शन भी करते थे। मैं उनके लिये 'एक अनुभवहीन बालक' था। उनका मेरे नाम २३ फरवरी १९५९ का एक पत्र मुझे नरवाना में प्राप्त हुआ था। यह पत्र इस समय मेरे सामने है। इस पत्र के आरम्भिक शब्द हैं-

''मान्यवर राजेन्द्र जी'' हमारा सर्वमान्य नेता, देश के श्रेष्ठतम पत्रकारों में से एक इस बालक को 'मान्यवर' और 'जी' लिखकर सम्बोधित करता है। हम अब कुछ नहीं लिखेंगे। हमारे इस समय के बड़े-बड़े विद्वान् इस पर कुछ टिप्पणी करेंगे तो समाज का हित विशेष होगा।

लो और नोट करें- स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज एक पत्र लिखकर मठ में स्वामी ईशानन्द जी को सुनाने उनके कमरे में पहुँच गये। हमारे पूजनीय स्वामी सर्वानन्द जी मठ में अनेक बार माननीय अतिथियों के कमरे में आकर जो कुछ कहना-बताना होता था, आकर बताया करते थे। यह उनकी महानता थी। इससे पता चलता था कि वे महापुरुष मान-अपमान से बहुत ऊपर उठ चुके थे।

इसके विपरीत मुझसे एक अधकचरे योगी ने जो आयु में मुझे ३५ वर्ष छोटा होगा, उसने मुझे बुलवाकर मुझसे कुछ पूछताछ की। मेरे पास जहाँ मैं ठहरा था, आने में उसे केवल आधा मिनट लगता था, परन्तु उसका अहं इसमें बाधक था।

पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी का क्या कहें?- उन्हें अनुभवहीन उनके भक्त जिज्ञासु ने लिखा, आपने धर्म सुधासार में लिखा है कि पं. लेखराम जी का हत्यारा छः मार्च को उनके पास पहुँचा। यह ठीक नहीं। वह १६ फरवरी को पण्डित जी का पता करता-करता महात्मा हंसराज जी के पास पहुँचा...। लौटती डाक आपने लिखा, ''इसके अगले संस्करण में आप इसकी कोई और भी अशुद्धि हो तो दूर कर देना। मुझे तो इतना पता नहीं था।'' और भी आपने कई बार अपनी भूल (अनजाने अथवा अल्पज्ञता से) के लिये लिखा, ''मुझे इसका इतना ज्ञान नहीं था।''

मीत पै वारी, इस प्रीत पै वारी- पूज्य पं. सुधाकर चतुर्वेदी जी का जन्म सन् १८९७ का है। वह इस समय १२३ वें वर्ष को पार कर चुके हैं। यह विनीत स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के इस वयोवृद्ध ज्ञानवृद्ध शिष्य के दर्शन करने न जाने कितनी बार बैंगलूरु जा चुका है। उनका अब तक का सबसे बड़ा सम्मान समारोह इसी सेवक की अध्यक्षता में आयोजित किया गया। आपने तीन बार मेरा सम्मान किया है। एक बार शॉल के साथ राशि भी दी तो मैंने लेने से इन्कार कर दिया तो **आप बोले, ''मैं भी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का शिष्य और आप भी उनके शिष्य हैं। मैं आपसे बड़ा हूँ। आप मेरे गुरु भाई हैं। आप मेरा कहा कैसे टाल सकते हैं?''**

मेरे हृदय से अनायास ये शब्द निकले, ''**मैं मीत पै वारी, इस प्रीत पै वारी, मैं दिलजीत पै वारी।**'' आर्यो, बड़ों की क्या-क्या बातें बतायें?

विविध विचार- एक समय था जब आर्यजगत् में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण प्रेरक प्रसंग तथा ज्ञात-अज्ञात नींव के पत्थर आर्यवीर के सम्बन्ध में पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी तथा पं. विष्णुदत्त जी का लेख व कथन प्रामाणिक जानकारी के दो मूल स्रोत माने जाते थे। वर्तमान काल में पं. विष्णुदत्त जी के लेखों का एक ही पाठक है दूसरा कहीं भी कोई भी नहीं और वह इन पंक्तियों का लेखक है। श्री स्वामी जी की इतिहास

की सामग्री इसी लेखक के कारण वर्तमान में प्रचारित हो सकी है। इसी का फल है कि महाराज के भक्त व सहयोगी आचार्य प्रियव्रत जी ने एक पत्र में इस विनीत को पूज्य स्वामी जी के द्वारा दिये जाने वाले दृष्टान्तों को भी सुरक्षित करने का कार्य सौंपा। वह भी हमने बहुत कुछ कर दिखाया। आर्यसमाज में इनके पश्चात् पं. निरञ्जनदेव जी इतिहासकेसरी तथा राजेन्द्र 'जिज्ञासु' को आर्यसमाज के इतिहास की सूक्ष्म व व्यापक जानकारी के लिये प्रमाण माना जाने लगा। ये दोनों इतिहासप्रेमी आर्य सेवक उसी फ़ैक्ट्री की उपज हैं। सारा आर्यजगत् पूज्य स्वामी जी को इनका निर्माता मानता है।

कुछ महानुभावों के अहं को इससे चोट पहुँची तो इन्हें नीचा दिखाने का हर सम्भव उपाय किया गया। इस प्रकार के लोगों ने तो पूज्य स्वामी जी को न तो कभी प्रकाण्ड विद्वान् ही माना और न ही इतिहासकार के रूप में उनका मूल्याङ्कन किया। भले ही पं. जयचन्द्र जी विद्यालङ्कार की कोटि का देश का एक सर्वमान्य इतिहासकार उन्हें इतिहासगुरु मानकर नमन किया करता था। हम अपमान का विषपान चुपचाप पीते गये।

एक ने हमें चुनौती दी, ''कहाँ लिखा है कि माता भगवती विधवा थी? हम तो पहले ही लिख चुके थे कि हम माई जी के जन्मक्षेत्र में भी रहे। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के श्रीमुख से तथा माताजी के मिशन में सहयोगी रहे दीवान बद्रीप्रसाद जी, श्री मेहता जैमिनि, महाशय चिरञ्जीलाल जी प्रेम आदि के मुख से जो सुना और पढ़ा वही कुछ लिख रहे हैं। एक ने लिखा, ''एक लड़की भगवती''। ऐसों को क्या उत्तर देते? हमने एक ग्रन्थ में सद्धर्म प्रचारक में माता भगवती के जीवन पर छपे स्वामी श्रद्धानन्द जी का लेख अनूदित करके छाप दिया। सद्धर्म की फाइल से माताजी के कई समाचार छाप दिये। एक ही सम्पादकीय में उस 'लड़की' को चार बार श्रीमती लिखा गया है। वह पिता के घर में रहती थी वहीं निधन हुआ। विधवा होने में क्या संशय बचा? ऋषि के सबसे पहले पत्रव्यवहार में उसके पत्रों के ऊपर भी उसे श्रीमती छपा था-वे छपवा दिये। किसी ने अपनी भूल पर क्षमा न माँगी।''

देश-विदेश के New Arya Samajists ने प्यार व सत्कार दिया- एक ईरानी विद्वान् ने इंग्लैण्ड में पीएच.डी. करते-करते हमारे साहित्य व तड़प-झड़प पढ़कर हमारी खोज का लोहा माना। आओ! पं. लेखराम के इस चरणानुरागी के नाम उसके पत्रों को पढ़कर हमारे गुरुजनों-निर्माताओं को एक बार नमन करके आर्यसमाज की शान को चार चाँद लगाने के लिये हमारे गुरुजनों का आभार तो प्रकट करो।

उस डॉ. शहरयार की प्रेरणा से पहली बार एक आर्यसमाजी लेखक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' को पं. लेखराम जी, पं. देहलवी जी, स्वामी दर्शनानन्द जी पर एक-एक ग्रन्थ लिखने का गौरव प्राप्त हुआ। यह घटना क्या बेजोड़ नहीं?

उस गवेषक के शोध के निष्कर्ष का निर्णय बदल गया। आर्यसमाज के पक्ष में गया। हमें धन्यवाद न दो परोपकारी, परोपकारिणी सभा, डॉ. धर्मवीर जी तथा श्री अजय आर्य दिल्ली को ही धन्यवाद दे दो।

सारे संसार में प्रचारित-प्रसारित कई ग्रन्थों में केवल एक ही आर्यसमाजी साहित्यकार के जीवन-परिचय में इतिहास में पहली बार परोपकारिणी सभा तथा हमारे अनेक महापुरुषों का नाम बार-बार छपा है। 'तड़प-झड़प' की लोकप्रियता पर दुःखी होने की आवश्यकता नहीं, इसी के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त साहित्यकार विद्वान् श्री अनवर शेख जी परोपकारी पढ़वा कर सुना करते थे। अपने निधन होने पर सबसे पहले हमें सूचना देने की इच्छा व्यक्त की। अपने दाहकर्म करने का निर्णय करवा गये।

इस काल में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित साहित्य अकादमी की एक ग्रन्थमाला में ग्यारह सहस्र साहित्यकारों की जीवनियाँ होंगी। उनमें केवल एक ही आर्यसमाजी मिशनरी लेखक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' का जीवन-परिचय मिलेगा। हम तो ऐसे कई ग्रन्थों में श्री पं. सत्यानन्द जी, डॉ. धर्मवीर जी, डॉ. सुरेन्द्र जी आदि अपने ५-१० विद्वानों को सम्मिलित करने की स्वीकृति लेकर आये थे। श्री लक्ष्मण जी 'जिज्ञासु' भी तब हमारे साथ थे। यदि उनको फिर मिलने जाते तो बात बनी बनाई थी, फिर ईर्ष्यालु कृपालुओं को सम्भाल पाना सम्भव न होता। अब एक आर्य महाकवि सुरूर जी पर एक मुसलमान विचारक बन्धु का ग्रन्थ विमोचित होगा। हमारे १४५ वर्ष के इतिहास में ऐसी दूसरी घटना नहीं मिलेगी। यह भी तड़प-झड़प तथा परोपकारी के सहयोग से इतिहास बन गया है। श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त को भी इसका श्रेय है। जीवन की साँझ में अब क्या करना है। यह घोषणा शीघ्र की जावेगी।

ऐतिहासिक कलम से....

ईश्वर के स्वरूप का दार्शनिक और वैज्ञानिक विवेचन
वेद की नित्यता पर प्रकाश
(सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास के आधार पर)

पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनमें यह सप्तम लेख 'ईश्वर के स्वरूप का दार्शनिक और वैज्ञानिक विवेचन-वेद की नित्यता पर प्रकाश' आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार द्वारा लिखा गया है। -सम्पादक

अनेक विद्वानों की यह धारणा है कि वेद में अनेक ईश्वरों का वर्णन है। पौराणिकों के विभिन्न सम्प्रदाय और उनमें पृथक्- पृथक् आराध्यदेवों का प्रचलन देखकर ही शायद उन्होंने यह धारणा बनाई हो। पौराणिकों के आचरण को देखकर उसे वेद पर आरोपित करने की भूल करनेवालों में सबसे आगे हैं वे पाश्चात्य विद्वान् जिनके वेद सम्बन्धी प्रभूत परिश्रम के आगे नत-मस्तक होकर भी हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि वेद में अनेकेश्वरवाद (Polytheism) सिद्ध करने की उनकी चेष्टा दुश्चेष्टा मात्र है।

वेद में अनेक ईश्वरों के वर्णन की कल्पना एक और भ्रम पर भी आधारित है। आजकल विज्ञान की प्रत्येक शाखा में प्रचलित विकासवाद के आधार पर सोचनेवाले लोग यह समझते हैं कि ईश्वर की कल्पना बौद्धिक ज्ञान की पराकाष्ठा की द्योतक है, और वेद क्योंकि आदिम रचना है, इसलिए आदिकाल के लोगों की बुद्धि का विकास इतना नहीं हो सकता कि वे ईश्वर के एकत्व की कल्पना कर सकें। वे तो नदी-नालों, वृक्ष-वनस्पतियों, भूधरों, वर्षा, बादल, बिजली आदि प्राकृतिक विपर्ययों और भौतिक घटना-विलासों को ही देव समझकर पूजने लगे या उन्हीं में ईश्वरत्व की बुद्धि रखने लगे। विकासवाद-जनित इसी कपोल-कल्पना के आधार पर इस्लाम के मतानुयायी यहाँ तक कहने लगे कि संसार के बड़े धर्मों में हमारा धर्म सबसे अर्वाचीन है, इसलिए यह परिपूर्ण धर्म है और इस परिपूर्णता की कसौटी यह है कि इस्लाम में एकेश्वरवाद पर सबसे अधिक बल दिया गया है। 'तौहीद की अमानत सीने में है हमारे' -कहकर इसी एकेश्वरवाद को इस्लाम का सबसे बड़ा वरदान स्वीकार किया गया है। इस्लाम के इस एकेश्वरवाद की चकाचौंध से कुछ लोग इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने यहाँ तक कहने में संकोच नहीं किया कि मध्यकाल में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद के दार्शनिक आधार पर ईश्वर के एकत्व का जो प्रचार किया वह इस्लाम के और मुसलमान सूफियों के एकेश्वरवाद से ही प्रेरित होकर किया। ऐसा कहने वाले भारतीय विद्वानों में पं. सुन्दरलाल, डॉ. ताराचन्द और केन्द्रीय शिक्षामन्त्री डॉ. हुमायूँ कबीर प्रभृति का नाम लिया जा सकता है।

ईश्वर एक है -

जहाँ तक वेद का सम्बन्ध है, उसकी बात वेद के ही आधार पर कही जाए तो अच्छा है, क्योंकि अन्य ग्रन्थ के आधार पर कही हुई बात परत:प्रमाण होगी और उसके विवाद का विषय बन जाने की भी सम्भावना है। इसके अलावा वेद स्वयं इतना समर्थ है कि उसे अपनी बात की

पुष्टि के लिए किसी अन्य ग्रन्थ की सहायता की आवश्यकता नहीं।

वेद ने स्वयं ही उक्त गुत्थी सुलझा दी है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है

इन्द्र मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।

ऋक् १.१६४.४६।।

ज्ञानी लोग एक ही ईश्वर को अनेक नामों से पुकारते हैं-अग्नि, यम, मातरिश्वा, इन्द्र, मित्र, वरुण, सुपर्ण, गरुत्मान्-सब उसी एक ईश्वर के नाम हैं। [देखिये सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास-उसमें परमात्मा के इस प्रकार के १०८ नामों की व्याख्या की गई है।]

इसी प्रकार **''य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति''** (ऋक् १.७.९), **''य एक इद्विदयते वसु मर्त्ताय दाशुषे''** (ऋक् १.८४.७); **''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्''** (यजु. ४०.१), **''भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः''** (अथर्व. २.२.१)-इत्यादि अनेक मन्त्र चारों वेदों से उद्धृत किये जा सकते हैं, जिनसे ईश्वर का एकत्व प्रतिपादित होता है। विशेष बात यह है कि जहाँ ईश्वर की एकता के प्रतिपादक सैकड़ों मन्त्र हैं, वहाँ ईश्वर की अनेकता को सिद्ध करनेवाला एक मन्त्र भी प्रस्तुत करना कठिन है। इसी प्रसंग में अथर्ववेद (१३.४.२) के १६ से १८ तक के मन्त्र ध्यान देने योग्य हैं-

''न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
स एष एक एकवृदेक एव।''

-उसे दूसरा, तीसरा और चौथा नहीं कह सकते। पाँचवाँ, छठा, सातवाँ भी नहीं कह सकते। आठवाँ, नवाँ और दसवाँ भी नहीं कह सकते। वह एक ही है, अकेला ही जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करने वाला है। वह एक ही है।

अनेकेश्वरवाद का खण्डन करनेवाला और ईश्वर की एकता का प्रतिपादन करनेवाला इससे अधिक स्पष्ट और प्राञ्जल वर्णन संसार के अन्य किसी धर्मग्रन्थ में नहीं मिल सकता-यह बात चुनौती देकर कही जा सकती है। न सही अनेक ईश्वर, परन्तु वेद में अनेक देवताओं का तो वर्णन है? इसे कोई अस्वीकार नहीं करता। वेद में अनेक देवताओं का तो वर्णन अवश्य है, किन्तु उपासना के योग्य ईश्वर सर्वत्र एक ही बताया गया है। जहाँ तक **देव** या **देवता** शब्द की बात है, वहाँ सर्वत्र समझना यह है कि **'देव'** शब्द **'दिवु'** धातु से बनता है। उस **'दिवु'** धातु का व्याकरणसम्मत अर्थ है-क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति। अर्थात् जिस किसी पदार्थ में इनमें से किसी भी गुण-विशेष का आधिक्य हो, वही देव कहलाएगा। संक्षेप से कह सकते हैं कि दिव्य गुण को धारण करनेवाली प्रत्येक वस्तु देवकोटि में आती है। पृथिवी, अग्नि, वायु, जल, चन्द्र, सूर्य आदि सब देव हैं, क्योंकि विशिष्ट गुणों को धारण करनेवाले हैं। विद्वानों को भी देव कहते हैं, क्योंकि वे अपनी विद्या के बल पर चमकते हैं। देववाची प्रत्येक शब्द प्रकारान्तर से परमात्मा का भी वाची होता है, क्योंकि आखिर सब देवों का अधिष्ठाता तो वही है। कौन-सा देववाची शब्द किस स्थान पर परमात्मा का वाचक है और किस स्थान पर अन्य पदार्थ का, इसका निर्णय प्रकरण के अनुसार करना होगा। देवता अनेक होने पर भी आराध्यदेव केवल ईश्वर है और वह सब देवों का अधिष्ठाता है- वेद का यही सिद्धान्त है और इसमें कहीं शंका का स्थान नहीं है।

तैंतीस देवता -

यजुर्वेद में जो तैंतीस देवताओं का वर्णन आता है, उसकी व्याख्या शतपथ के अनुसार इस प्रकार है-आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र और एक प्रजापति (८+११+१२+१+१=३३) ये तैंतीस देवता हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र-ये आठ वसु हैं, क्योंकि ये समस्त सृष्टि के वास-हेतु हैं; इनके बिना सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र हैं, क्योंकि जब ये शरीर को छोड़कर जाने लगते हैं तो सबको रुलाते हैं। संवत्सर के बारह मास चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन ये बारह आदित्य हैं, क्योंकि ये सबकी आयु को लेते जाते हैं। इन्द्र

है बिजली-अन्तरिक्ष में यह वृष्टि की जनक है और भूलोक में वैज्ञानिक क्रान्ति की जनक है-इसलिए ऋषि ने इसे परमैश्वर्य का हेतु बताया है। बिना उद्योगों के राष्ट्र समृद्ध नहीं हो सकता और बिना बिजली के उद्योगों का विस्तार नहीं हो सकता। उद्योगीकरण से राष्ट्र को ऐश्वर्यशाली बनाने के लिए ही बिजली की अधिकाधिक आवश्यकता है और इसीलिए इस दिशा में इतना प्रयत्न किया जाता है। प्रजापति है यज्ञ। यज्ञ को प्रजापति इसलिए कहा है कि यज्ञ के द्वारा ही वायुमण्डल की शुद्धि, वृष्टि, जल और औषधि की शुद्धि होती है तथा विद्वानों के संगतिकरण से अनेक शिल्पविद्याओं का विकास होता है और ये ही सब प्रजापालन में सहायक हैं।

क्या ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव है? -

आप देवताओं की व्याख्या के चक्कर में पड़े हैं, परन्तु हम तो सब देवों के देव-ईश्वर की सत्ता को ही स्वीकार करते हैं। क्या ईश्वर का अस्तित्व किसी तरह सिद्ध किया जा सकता है?

यों तो ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिए अन्य अनेक प्रकार की युक्तियाँ दी जा सकती हैं; किन्तु इस समुल्लास में ऋषि ने अद्‌भुत ढंग से ईश्वर की सत्ता सिद्ध की है। जितने वैज्ञानिकम्मन्य लोग हैं, वे यह कहते हैं कि हम तो केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं, अप्रत्यक्ष वस्तु तत्त्व में हमारी आस्था नहीं। प्रयोगशाला में बैठकर अपनी इच्छानुसार जिस पदार्थ को तोड़ने-फोड़ने, घटाने-बढ़ाने और उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया को जाँचने की सुविधा वैज्ञानिक को न मिले उस पदार्थ की सत्ता में वह विश्वास करे भी कैसे? न्यूट्रोन, प्रोटोन, और इलेक्ट्रोन जैसे सूक्ष्म तत्त्वों तक पहुँचकर तो उसका 'अहम्' और भी फूल गया। वैज्ञानिक यह समझने लगा कि अणुबम बनाकर सृष्टि का संहार करने की कुञ्जी मैंने अपनी मुट्ठी में बन्द कर ली, इसलिए इस सृष्टि का कर्त्ता-धर्त्ता-संहर्ता मेरे सिवाय और कौन हो सकता है?

ऋषि ने कहा कि ईश्वर का भी प्रत्यक्ष होता है। ईश्वर प्रत्यक्ष न होने की जिस युक्ति के भरोसे नास्तिकों के सब सम्प्रदाय और आधुनिक वैज्ञानिकगण मन में फूले नहीं समा रहे थे, ऋषि ने उसकी जड़ ही काट दी।

ईश्वर का प्रत्यक्ष कैसे होता है, अब यह देखिये।

न्यायदर्शन के अनुसार, इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न जो निर्भ्रान्त और निश्चयात्मक ज्ञान है, वही प्रत्यक्ष कहलाता है। इन्द्रियाँ हैं- आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा तथा मन। आँख से रूप का अनुभव होगा, नाक से गन्ध का, कान से शब्द का, जिह्वा से रस का और त्वचा से स्पर्श का। अब रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द तो गुण हैं, किन्तु जब इन्द्रियों का इन गुणों से सन्निकर्ष होता है, तब हम आत्मायुक्त मन से गुणी का प्रत्यक्ष करते हैं। विज्ञान की दृष्टि से पदार्थ उसको कहते हैं जिसमें भार हो और जो स्थान घेरे। इस व्याख्या के अनुसार जैसे रूप, रस आदि पदार्थों के गुण हैं, वैसे ही भार होना या स्थान घेरना भी गुण है; स्वयं पदार्थ नहीं। रूप, रस आदि का तो कोई भार भी नहीं होता, न ही वे स्थान घेरते हैं। समस्त संसार में जितने भी पदार्थ हैं उन सब के गुणों का ही सम्पर्क हमारी इन्द्रियों के साथ होता है और उनके गुणों के सम्पर्क से ही हम कहते हैं कि हमें अमुक पदार्थ अर्थात् गुणी का प्रत्यक्ष हो जाएगा। जिस प्रकार हम सामान्य व्यवहार में गुण से गुणी का प्रत्यक्ष करते हैं उसी प्रकार इस समग्र सृष्टि रचना-चातुरी को देखकर इसके रचयिता अर्थात् गुणी परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है। यदि कहा जाए कि परमात्मा का इस प्रकार प्रत्यक्ष हम नहीं मानते तो लोक में भी किसी पदार्थ का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं; यदि लोक में किसी भी पदार्थ का प्रत्यक्ष सम्भव है-जिससे न चार्वाक इनकार करते हैं, न विज्ञान को सर्वेसर्वा समझने वाले कम्युनिस्ट तथा अन्य नास्तिक-तो सृष्टि को देखकर सृष्टिकर्त्ता का भी प्रत्यक्ष मानना ही होगा। सृष्टि-रचना में कहीं चातुरी नहीं है, इस बात से कट्टर से कट्टर नास्तिक भी इनकार नहीं कर सकता। चातुरी गुण है और वह गुणी का प्रत्यक्ष करवाने में प्रमाण है।

एक अन्य युक्ति -

ईश्वर की सत्ता में एक और अकाट्य युक्ति है। नास्तिक लोग ईश्वर की सत्ता से भले ही इनकार करें, किन्तु जीवात्मा की सत्ता से इनकार करना उनके बस की भी बात नहीं। जीवात्मा की सत्ता का निषेध करना तो एक तरह से अपनी ही सत्ता का निषेध करना हुआ-और

अहम्भाव से ओत-प्रोत वैज्ञानिकम्मन्य ऐसा कैसे कर सकता है? प्रश्न यह है कि जब मनुष्य परोपकार या भलाई का कोई काम करने लगता है, तब उसके मन में भलाई के लिए उत्साह और प्रेरणा कहाँ से पैदा होती है? और जब मनुष्य कोई अनाचार या बुराई का काम करने लगता है, तब उसके मन में भय, शंका और लज्जा की भावना कौन पैदा करता है? मनुष्य का मन तो सदा पानी की तरह नीचे की ओर, पतन की ओर, जाने के लिए उद्यत रहता है, उत्थान के पथ पर बढ़ने की उमंग उसमें कहाँ से पैदा होती है? कहना नहीं होगा कि यह काम परमात्मा की ओर से होता है। जीवात्मा तो इस विषय में सर्वथा तटस्थ है, बल्कि मन की गति के साथ ही चलने की ओर उसका झुकाव अधिक रहता है। अच्छाई की प्रेरणा और बुराई से संकोच ऐसी सार्वत्रिक भावना है कि पापी से पापी आदमी भी इसकी सच्चाई से मना नहीं कर सकता। परम दार्शनिक, परम वैयाकरण और साहित्यिक योगिराज भर्तृहरि ने इसीलिए ईश्वर की सिद्धि का एकमात्र प्रमाण **'स्वानुभूत्येकमानाय'** कहकर दिया है-अर्थात् ईश्वर की सत्ता का एकमात्र प्रमाण अपनी अनुभूति है और जिसको एक बार अच्छाई के प्रेरक और बुराई के निवारक प्रभु की सत्ता की अनुभूति हो गई है, सारा संसार भी अपने तर्कजाल के अम्बार के बल पर उसे अनुभूति से विरत नहीं कर सकता। यही अनुभूति महापुरुषों को संघर्षों का और विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करने की शक्ति प्रदान करती है।

ईश्वर सर्वव्यापक है -

अच्छा मान लिया कि ईश्वर है, किन्तु वह रहता कहाँ है? कोई कहता है कि वह गोलोक में रहता है, कोई कहता है कि क्षीरसागर में शयन करता है, कोई कहता है कि कैलाश पर निवास करता है, कुछ लोग चौथे आसमान पर और अन्य लोग सातवें आसमान पर उसका निवास बताते हैं। आखिर जब ईश्वर है, तो कहीं न कहीं रहता भी होगा ही?

रहता क्यों नहीं, रहता है, किन्तु कहीं या किसी एक स्थान पर नहीं रहता। ईश्वर सब स्थानों पर रहता है। कभी भी किसी ऐसे स्थान की कल्पना नहीं की जा सकती जहाँ ईश्वर न हो। वह सर्वव्यापक है। किसी स्थान-विशेष पर उसकी कल्पना करने से वह एकदेशी हो जाएगा। जो एकदेशी होगा, सर्वव्यापक नहीं हो सकता। जो सर्वव्यापक होगा वह एकदेशी नहीं हो सकता। दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं। जिन लोगों ने परमात्मा को किसी एक स्थान पर प्रतिष्ठित माना है वे प्रकारान्तर से उसके सर्वव्यापक होने का खण्डन करते हैं। किसी एक स्थान पर होने का अर्थ ही यह है कि वह उससे भिन्न स्थान पर नहीं है। जो यहाँ है और वहाँ नहीं या वहाँ है और यहाँ नहीं, वह सर्वव्यापक कैसा?

क्या ईश्वर साकार है? -

इसके साथ प्रश्न जुड़ा हुआ है कि परमात्मा साकार है या निराकार?

ईश्वर को साकार मान लेना जितना आसान है उतना ही कठिन है उसे साकार सिद्ध करना। जो साकार है, वह सर्वव्यापक कैसे हो सकता है? जो व्यापक नहीं, वह सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता, सर्वान्तर्यामी भी नहीं। जिसका आकार होगा, वह परिमित होगा और परिमित वस्तु के गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित होंगे। परिमित वस्तु को सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, रोग, शोक और छेदन-भेदन का भी शिकार होना पड़ेगा। इसलिए ईश्वर न परिमित है, न ही साकार। साकार हो तो उसका कुछ न कुछ आकार होगा। वह लम्बा, चौड़ा, गोल, चपटा-कुछ तो होगा ही, उसका आयतन और आयाम दोनों ही मानने होंगे और आयतन तथा आयाम दोनों मानते ही वह भारवान् और विस्तारवान् में भौतिक-पिण्ड मात्र रह जाएगा।

यदि लम्बाई-चौड़ाई वाला कोई ज्यामितिक और भौतिक पिण्ड नहीं, तो क्या वह मानवाकृतिवाला कोई पदार्थ है? " God made the man in His image"- परमात्मा ने मनुष्य को अपनी नकल पर बनाया-यह कहनेवाले समझते हैं कि असल भी नकल से मिलता-जुलता ही होना चाहिए-अर्थात् परमात्मा की भी आदमी जैसी ही शक्ल है। परमात्मा को अवतार लेने वाला बतानेवाले भी ईश्वर की आदमी जैसी ही शक्ल मानते हैं। वैसे ही आँख, कान, नाक आदि सभी अवयव। ईसा को परमेश्वर का पुत्र मानने वाले ईसाई, हज़रत मुहम्मद साहब

को खुदा का भेजा हुआ खास पैगम्बर माननेवाले मुसलमान या राम और कृष्ण आदि के रूप में परमात्मा का अवतार मानने वाले पौराणिक बन्धु-ये सब इस दृष्टि से समान हैं। सबके मन में परमात्मा मनुष्य आकृतिवाला है और वैसे ही हस्तपादादि अवयवों से संयुक्त है। वेद में भले ही ''अज एकपात्'' कहकर प्रभु को अजन्मा और ''**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरम्**'' कहकर उसे शरीररहित और नस-नाड़ी से रहित बताया गया हो एवं भले ही उपनिषदों में उसे ''**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता स पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः**'' कहकर उसे हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों और चक्षु-श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से रहित बताया गया हो, किन्तु एक अन्ध-परम्परा चल पड़ी है और उसी के अनुसार लाखों-करोड़ों लोग अवतारवाद के अभिशाप से ईश्वर के मानवाकृति होने के भ्रम से निकल नहीं पाते। अवतारवाद को सबसे अधिक प्रश्रय देने वाला गीता का यह श्लोक है

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। ४.७।।

-श्री कृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का विकास होता है, तब-तब मैं अपने आपको पैदा करता हूँ (शरीर धारण करके अवतार ग्रहण करता हूँ।)

गीता का उचित स्थान -

यहाँ गीता के सम्बन्ध में केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि वह स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर महाभारत का एक अंश मात्र है , इसलिए उसकी प्रामाणिकता भी उतनी ही है जितनी महाभारत की। इसी से यह बात भी स्पष्ट हो जानी चाहिए कि गीता के सम्बन्ध में जो यह प्रवाद प्रचलित उसमें श्रीकृष्ण के मुख से निकले हुए वचन हैं (''**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिस्सृता**'')- उसमें कोई तथ्य नहीं है। जिस तरह शेष महाभारत, जिसका असली नाम 'जय' है और जिसमें मूलतः केवल बीस हजार श्लोक थे, महर्षि व्यास की कृति है वैसे ही गीता भी महर्षि व्यास की ही रचना है। पूछा जा सकता है कि फिर गीता की इतनी लोकप्रियता का रहस्य क्या है? इसका उत्तर हम यह देंगे कि जिस प्रकार महात्मा गाँधी के सर्व-धर्म-समन्वयवाद ने सभी धर्मावलम्बियों को अविरोध भाव से एकत्र होने की प्रेरणा दी और इसीलिये लोकसंग्रह की दृष्टि से महात्मा गाँधी सबसे अधिक सफल और लोकप्रिय नेता कहे जा सकते हैं, वैसे ही गीता में सभी दार्शनिक सम्प्रदायों का ऐसा अद्भुत समन्वय है कि सभी को उसमें अपने पक्ष का पोषण मिल जाता है। इसीलिए गीता अपने चारों और इतना लोकसंग्रह कर सकी। दार्शनिक विवेचना करनेवालों को गीता में परस्पर-विरोधी बातें भी मिल जाएंगी, पर एक ही साथ '**रामाय स्वस्ति**' और '**रावणाय स्वस्ति**' कहनेवाले के पीछे जैसे राम और रावण दोनों के अनुयायी चलने को तैयार हो जाएंगे, बहुत कुछ वही हाल गीता का भी है।

श्लोक का अर्थ -

यदि समाजशास्त्र की दृष्टि से गीता के उक्त श्लोक की व्याख्या की जाए तो उसमें एक ऐसे ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान का अर्थ यह समझा जा सकता है कि जब-जब किसी जाति का सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से अधःपतन हो जाता है तब-तब उसमें ऐसे महापुरुष पैदा होते हैं जो उस जाति को पतन के गर्त से निकालकर उन्नति के शिखर पर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। इतिहास की शिक्षा यही है कि कोई भी महापुरुष जन्म से महापुरुष नहीं होता, किन्तु अपने समय की परिस्थितियाँ ही उसे महापुरुष बनाती हैं। पराधीन भारत में दयानन्द, श्रद्धानन्द, तिलक, रवीन्द्र, सुभाष प्रभृति जैसे नररत्न पैदा हुए, क्या वैसे नररत्नों की कल्पना स्वाधीन भारत में की जा सकती है। जितनी तीव्र क्रिया होगी, उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया होगी-यह विज्ञान का सिद्धान्त है। भारत का जितना तीव्र अधःपतन हुआ था उसी का यह परिणाम था कि उसने अनेक ऐसी विभूतियों को जन्म दिया जो केवल भारत-वन्द्य नहीं प्रत्युत विश्ववन्द्य हैं। दुःख को इसीलिए रसायन कहा जाता है।

यदि मनोविज्ञानपरक अर्थ इस श्लोक का किया जाए तो उसे यों समझा जा सकता है कि अपने चारों और धर्म को घटता और अधर्म को बढ़ता देखकर किसी दृढ़ संकल्प धर्मात्मा व्यक्ति के मन में यह भाव आ सकता है कि मैं

अधर्म का नाश करके धर्म का राज्य स्थापित करूँगा। यह भी एक शाश्वत सामाजिक प्रवृत्ति है जो सभी धार्मिक महापुरुषों के जीवन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस प्रवृत्ति को हृदयंगम किये बिना विभिन्न देशों में पैदा हुए विभिन्न महापुरुषों के जीवन की व्याख्या की ही नहीं जा सकती। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है। इसीलिए इस श्लोक से अवतारवाद सिद्ध करनेवालों को उत्तर देते हुए ऋषि ने लिखा है कि 'वेद-विरुद्ध होने से अवतार लेने की बात प्रमाण नहीं मानी जा सकती। किन्तु ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेकर श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो इसमें कुछ दोष नहीं।' ''**न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् कामये। दु:खतप्तानां प्राणी-नामार्तिनाशनम्।**'' मैं राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं चाहता, मोक्ष भी नहीं, किन्तु दु:ख से सन्तप्त नर-नारियों का दु:ख-नाश करने के लिए इस लोक में जन्म ग्रहण करना चाहता हूँ। यही तो सत्पुरुष की असली मनोभावना है और यह कितनी प्रबल होती है इसकी कल्पना इसी से की जा सकती है कि दु:खीजनों के दु:ख-नाश के लिए वह राज्य, स्वर्ग, मोक्ष सभी को तिलांजलि देने को तैयार है। मोक्ष न चाहने से ही यह अर्थ स्वयं निकल आता है कि मैं इस लोक में जन्म ग्रहण करना चाहता हूँ।

जैसे वेद को समझने के लिए वेद स्वयं सहायक है, वैसे ही गीता ने भी बहुत बार अपनी गुत्थियाँ अपने आप खोल दी हैं। उक्त श्लोक में यही तो कहा है न-'**तदात्मानं सृजाम्यहम्**'- यहाँ 'आत्मानं' शब्द का क्या अभिप्राय है, यह गीता से ही पूछना चाहिए। जिस व्यक्ति ने गीता में '**तदात्मानं सृजाम्यहम्**' लिखा, उसी ने लिखा है- '**योगी त्वात्मैव मे मतम्**' अर्थात् योगी को तो मैं अपना आत्मा ही मानता हूँ। अब '**तदात्मानं सृजाम्यहम्**' में 'आत्मानं' शब्द के स्थान पर 'योगिनाम्' शब्द रखकर देखिए। '**तदा योगिनं सृजाम्यहम्**' का अर्थ होगा-मैं योगी को पैदा करता हूँ। (यहां 'सृजामि' शब्द को लुप्तणिजन्त प्रयोग मानना होगा, अर्थात 'सर्जयामि' के स्थान पर 'सृजामि' शब्द का प्रयोग हुआ है।) यदि 'सृजामि' को 'सर्जयामि' मानने में बाधा हो और उक्त श्लोक को श्रीकृष्ण के ही मुख का वचन मानना हो तो अर्थ यह हो जाएगा कि 'योगी के रूप में मैं जन्म लेता हूँ।'

अब जरा पूरे श्लोक का अर्थ देखिए 'जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं किसी योगी (महापुरुष) को पैदा करता हूँ।'- यह अर्थ समाज-शास्त्र के दृष्टिकोण से सर्वथा सुसंगत है या दूसरा अर्थ यह होगा; जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब कोई योगी (मैं) पैदा होता है (हूँ)।' यह अर्थ मनोविज्ञान की दृष्टि से सुसंगत है। इससे अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और क्या हो सकता है?

तर्क से अवतारवाद का खण्डन -

इस प्रकार किसी प्रमाण से अवतारवाद के सिद्ध होने की सम्भावना नहीं। रही तर्क की बात, क्या तर्क से अवतार सिद्ध किया जा सकता है? यह और भी कठिन है। जब एक बार ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी और निराकार मान लिया, तब तर्क से ईश्वर का अवतार कैसे सिद्ध किया जा सकता है? जो निराकार और सर्वव्यापी है वह आकार ग्रहण करने के लिए माँ के पेट में एक स्थानबद्ध कैसे रहेगा। फिर जो जन्म लेगा वह मरेगा भी अवश्य। जो जन्म और मरण दोनों के चक्कर में पड़ा वह सामान्य मनुष्य ही होगा, ईश्वर नहीं। कहा जाता है कि राक्षसराज रावण और पापी कंस को मारने के लिए राम और कृष्ण के रूप में ईश्वर को अवतार लेना पड़ा। कैसी बचकानी-सी बात है। सोचिए किसी चीज को बनाना अधिक आसान होता है या बिगाड़ना। जिस इमारत को सैंकड़ों मजदूर मिलकर महीनों तक परिश्रम करके बनाते हैं और उसी को चन्द मजदूर चन्द दिनों में गिराकर रख देगें। मानना ही होगा कि बिगाड़ने की अपेक्षा बनाना कहीं अधिक कठिन कार्य है। सो रावण और कंस जैसे व्यक्तियों को, फिर वह कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, पैदा करने के लिए यदि अवतार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी तो उन्हें मारने के लिए अवतार लेने की आवश्यकता क्यों पड़ती? जो ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जैसे महान् कार्यों को करता है उसको किसी एक व्यक्ति का नाश करने के लिए भी अवतार लेना पड़े, इससे तो ईश्वर का नहीं किन्तु रावण और कंस का ही गौरव बढ़ता

है। तब तो सर्वशक्तिमान् ईश्वर नहीं, रावण ही हुआ।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है -

वाह, जब ईश्वर को सर्वशक्तिमान् कहते हो, अर्थात् वह सब कुछ कर सकता है, तो फिर अवतार ग्रहण क्यों नहीं कर सकता?

यह भी एक बड़ा विचित्र भ्रम लोगों में फैला हुआ है। जिस प्रकार पौराणिक बन्धु परमात्मा को सर्वशक्तिमान् कहकर 'कर्तुमकर्तुमन्यथा-कर्तुम्' अर्थात् करे, न करे, या विपरीत करे- की सामर्थ्य ईश्वर में मानते हैं, वैसे ही किरानी और कुरानी भी मानते हैं। निस्सन्देह पुराणियों से ही यह मनोवृत्ति किरानी और कुरानियों में गई है। जब ईसाई या मुसलमान कहते हैं कि हमारे पैगम्बर पर ईमान लाओ और उसकी सिफारिश से खुदा तुम्हारे सब गुनाह माफ कर देगा, तब वे भी परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता का यही अर्थ समझते हैं कि ईश्वर सब कुछ कर सकता है तो पापों को क्षमा क्यों नहीं कर सकता? प्राय: आर्यसमाज के साथ अन्य मतावलम्बियों का जब शास्त्रार्थ होता है तब बहुधा इस शब्द पर खूब विवाद होता है, परन्तु वे यह नहीं समझते कि ईश्वर की महत्ता सृष्टि के नियमों का उल्लंघन करने में नहीं, किन्तु सबसे उन नियमों का पालन करवाने में है। यदि नियामक ही नियमों का उल्लंघन करने लगे तो वह नियामक कहाँ रहा?

यों समझिये-राष्ट्र का संविधान एक बार बन गया अब उस संविधान की अवहेलना न राजा कर सकता है, न प्रजा। यदि कोई भी उसका उल्लंघन करेगा तो उच्चतम न्यायालय उसे तुरन्त अवैध ठहरा देगा और अवैध आचरण करनेवाले का स्थान जेल के अन्दर होगा। यदि कर्म करने की स्वतन्त्रता के अधिकार की दुहाई चोर और डाकू भी देने लगें तो किसी भी राज्य में न्याय और व्यवस्था कायम नहीं रह सकती। इसी प्रकार **'विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया'**- ईश्वर की इच्छा से चाहे जब अमृत विष बन जाए या विष अमृत बन जाए- तब संसार के जितने भी डॉक्टर हैं वे किसी भी रोग का उपचार न कर सकें। सृष्टि-रचना का, सृष्टि में उत्पन्न हुए प्रत्येक पदार्थ का एक विशेष नियम अथवा प्रयोजन है- उसी को सृष्टि-रचना का संविधान कहिए। सृष्टि के आदि में स्वयं ईश्वर ने ही वह संविधान बना दिया। उस संविधान का उल्लंघन न ईश्वर स्वयं कर सकता है और न ही उसकी प्रजा। राष्ट्रों के संविधान में सरकारों की इच्छा के अनुकूल संशोधन भी होते रह सकते हैं, किन्तु ईश्वर के सृष्टि-रचना के संविधान में संशोधन भी नहीं हो सकता। जो है, सो है, क्योंकि संशोधन अपूर्णता का द्योतक है और ईश्वर के संविधान में अपूर्णता हो नहीं सकती, इसलिए उसमें संशोधन भी नहीं हो सकता। ईश्वरीय संविधान तो सदा एक जैसा ही रहेगा। ईश्वर की सार्थकता इसी में है कि जितने ग्रह-नक्षत्र हैं और चराचर जगत् है, वह सब उसी के बनाए नियमों में गति करते रहें। यदि कहीं नियम का उल्लंघन हो गया तो सृष्टि-चक्र में व्याघात पड़ जाएगा।

उदाहरण के लिए गणित का नियम है, दो और दो चार होते हैं। यह नियम सार्वत्रिक है, इसे न मैं तोड़ सकता हूँ, न ईश्वर तोड़ सकता है। मैं तोडूँगा तो मुझे व्यवहार में कठिनाई होगी, यदि परमात्मा तोड़ेगा तो उसके समस्त सृष्टि-चक्र में व्याघात उपस्थित होगा। ऐसे ही कार्य-कारण का सिद्धान्त है-अर्थात् कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता। इसे जैसे मैं नहीं तोड़ सकता, वैसे ही परमात्मा भी नहीं तोड़ सकता। इस नियम के टूटने पर अणुओं के घात-संघात और पदार्थों की क्रिया-प्रतिक्रिया में अव्यवस्था हो जाएगी और Cosmos के स्थान पर बहुत बड़ा chaos उपस्थित हो जाएगा।

सर्वशक्तिमान् का अर्थ -

कभी-कभी बड़े मनोरंजक प्रश्न भी इसी सिलसिले में किये जाते हैं। जैसे, परमात्मा अपने जैसा दूसरा परमात्मा बना सकता है या नहीं? यदि कहें कि नहीं बना सकता तो वह सर्वशक्तिमान् नहीं रहा। यदि कहें कि बना सकता है, तो ईश्वर एक नहीं रहा, दो हो गये और जो दूसरा ईश्वर बनेगा भी, वह हूबहू पहले जैसा नहीं होगा, क्योंकि वह नकल ही होगी। यदि नकल को असल से बिलकुल मिला भी दिया, तब भी दूसरा बना हुआ ईश्वर पहले ईश्वर से हजारों साल आयु में छोटा होगा, क्योंकि पहला ईश्वर सृष्टि के आदिकाल से चला आ रहा है और दूसरा ईश्वर उसके हजारों सालों बाद प्रश्नोत्तर-काल के समय बनाया गया। इसी तरह का दूसरा प्रश्न है; जैसे बच्चे खेल

में मिट्टी-गारे से इतनी बड़ी ईंट बना लेते हैं कि वह उनसे भी नहीं उठती, क्या ऐसे ही ईश्वर भी इतनी बड़ी ईंट बना सकता है जो उससे भी न उठे? यदि कहें कि नहीं बना सकता, तो वही न बना सकने की अशक्ति वाली बात आ गई यदि कहें कि बना सकता है तो न उठा सकने की बात आ गई। सर्वशक्तिमान् वह दोनों तरह नहीं रहा। न हाँ कहने से, न ना कहने से। एक तीसरा प्रश्न है; मेरी इच्छा के विरुद्ध यदि मेरा नौकर काम करे तो मैं उसे अपने घर से बाहर निकाल दूँगा, किन्तु यदि मैं ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध आचरण करूँ तो क्या परमात्मा मुझे अपने घर से बाहर निकाल सकता है? यदि ना कहे तो सर्वशक्तिमान् नहीं रहा, यदि हाँ कहे तो सर्वव्यापक नहीं रहा। आखिर परमात्मा मुझे अपने घर से बाहर निकालेगा कहाँ-क्या कहीं ऐसा स्थान है जहाँ परमात्मा न हो।

इसी को कहते हैं **'उभयतःपाशा रज्जुः'**- न हाँ कहने से छुटकारा मिले, न ना कहने से-दोनों ओर से गले में फन्दा। इसी प्रकार से अन्य अनेक मनोरंजक प्रश्न किये जा सकते हैं। इन सब फाँसियों से बचने का केवल वही उपाय है जो ऋषि ने बताया है; अन्य कोई नहीं। अर्थात् सर्वशक्तिमान् का अर्थ यह नहीं है कि परमात्मा सब कुछ कर सकता है, बल्कि उसका अर्थ केवल इतना है कि परमात्मा के करने के जो काम हैं, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय-वह स्वयं इतना समर्थ है कि इनके करने में उसे किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं।

सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी -

सर्वशक्तिमान् के साथ ही दूसरा शब्द आता है-सर्वज्ञ। यदि परमात्मा सर्वज्ञ है अर्थात् वह सब कुछ जानता है तो वह अपना अन्त भी जानता होगा? यह प्रश्न भी शास्त्रार्थोपयोगी ही है। ज्ञान उसको कहते हैं जो यथार्थ हो-अर्थात् जो चीज जैसी हो उसे वैसा ही जानना ज्ञान है, इसके विपरीत अज्ञान है। ईश्वर क्योंकि अनन्त है, इसलिए उसे अनन्त समझना ही ज्ञान है, इसके विरुद्ध समझना अर्थात् परमात्मा को सान्त समझना या नाशवान् भौतिक पदार्थों को अनन्त समझना अज्ञान है। योगदर्शन के अनुसार **'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'** ईश्वर अविद्यादि क्लेशों से रहित और इष्ट-अनिष्ट या मिश्रित फलदायक कर्मों की वासना से रहित और सब जीवों से विशिष्ट है, इसलिए सामान्य जीवों की तरह मरण द्वारा परमात्मा का जन्मान्तर नहीं होता और इस प्रकार उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न नहीं बनता कि वह अपना अन्त जानता है या नहीं।

सर्वज्ञ का एक अर्थ है त्रिकालदर्शी-अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को एक साथ प्रत्यक्ष देखनेवाला। यहाँ यह प्रश्न होता है कि ईश्वर यदि त्रिकालदर्शी है तो वह यह भी जानता है कि जीव भविष्य में क्या करेगा इससे जीव का भावी कर्म ईश्वर के ज्ञान से बंध (conditioned) गया। फिर जीव स्वतन्त्र कहाँ रहा? जीव भविष्य में जो कर्म करेगा, यदि परमात्मा को उसका पहले से ही ज्ञान है, तो जीव ने एक तरह से वही काम किया जो ईश्वर ने अपने ज्ञान द्वारा उसके लिए पहले से निश्चित कर दिया, फिर किसी पाप कर्म के लिए बेचारे जीव को दण्ड क्यों? यदि दण्ड मिलना ही हो तो परमात्मा को ही मिले। न परमात्मा वैसा जानता, न जीव वैसा कर्म करता।

एकरस काल -

यहाँ भी थोड़ा-सा भ्रम है। काल के जो तीन विभाग हैं-भूत, वर्तमान और भविष्यत्-ये केवल आपेक्षिक परिभाषाएँ (Relative Terms) हैं। मुझे अपने घर की छत पर चढ़कर जितनी दूर तक का प्रदेश दिखाई देता है, यदि मैं हवाई जहाज में बैठकर देखूँ तो उसकी अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत प्रदेश का अवलोकन कर सकता हूँ। उपग्रह में बैठकर अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाले गागारिन और तेरेशकोवा जैसे यात्रियों को सारी पृथ्वी भी एक साथ दीख जाती है। जैसे समीप और दूर की परिभाषाएं सापेक्ष हैं। वैसे ही भूत और भविष्य की परिभाषाएँ भी सापेक्ष हैं। देश (Space) की दृष्टि से जिसे समीप और दूर कहते हैं उसी को काल (Time) की दृष्टि से वर्तमान तथा भूत और भविष्यत् कहते हैं।

यदि दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषण करने बैठ ही जाएँ तो काल के उक्त तीनों खण्डों का अस्तित्व सिद्ध करना कठिन हो जाएगा। देखिए- भूत क्या है, जो वर्तमान बीत

चुका है, वही भूत है। और जो वर्तमान आगे आनेवाला है, वही भविष्यत् है। इस तरह भूत और भविष्य दोनों वर्तमान पर आधारित हैं। एक तरह से यह कहा जा सकता है-भूत और भविष्यत् वर्तमानरूपी नदी के दो तट हैं। यदि नदी नहीं, तो दोनों तट भी नहीं रहेंगे। अब वर्तमान पर विचार कीजिए कि वह क्या है? वर्तमान का कुछ भूत अंश है और कुछ अंश भविष्य-जिस क्षण को आप वर्तमान कहना चाहते हैं उसका भी कुछ अंश बीत चुका है और कुछ अंश आगे आने वाला है-आपके कहते-कहते और आपके पकड़ते-पकड़ते वर्तमान का क्षण फिसलकर भूत और भविष्यत् की कोटि में पहुँच जाता है अर्थात् वर्तमान वर्तमान नहीं रहता और जब आपका वर्तमान ही टिक नहीं पाता तब उस वर्तमान के आधार पर चलने वाले आपके भूत और भविष्यत् कहाँ रुकेंगे-जब वर्तमान की ही नदी सूखी पड़ी है तब उसके भूत और भविष्यत् नामक दोनों तटों पर हरियाली कहाँ से आएगी? इसलिए कहना चाहिए काल अखण्ड और एकरस है। भूत और भविष्यत् की परिभाषाएँ केवल अल्पज्ञ जीव के लिए हैं। जीवों के कर्मों की अपेक्षा से ही परमात्मा को त्रिकालज्ञ या त्रिकालदर्शी कहा जा सकता है, स्वत: परमात्मा के लिए त्रिकाल नहीं है-केवल एक ही महाकाल है और वह सदा उसके लिए वर्तमान ही है।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र -

इससे न जीव के कर्म करने की स्वतन्त्रता में बाधा आती है, न ही परमात्मा की सर्वज्ञता में। जैसा कर्म जीव करता है, वैसा ही परमात्मा जानता है, और वैसा ही वह फल देता है। परमात्मा का जैसे जीव के कर्म का ज्ञान अनादि है, वैसे ही जीव द्वारा किये गये कर्म के फल का ज्ञान भी अनादि है। ये दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। सार रूप से यह कहा जा सकता है कि जीव अल्पज्ञ केवल वर्तमान को जाननेवाला और कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में परतन्त्र है; और परमात्मा सर्वज्ञ-सब कालों को जाननेवाला और जीव को कर्मानुसार फल देने में स्वतन्त्र है। परमात्मा की कर्मानुसार फल देने की स्वतन्त्रता भी उच्छृंखलता नहीं है, अर्थात न तो वह पाप क्षमा करता है, न ही पुण्य के लिए दण्ड देता है और न ही पाप को पुरस्कृत करता है। जैसा जिसका कर्म, वैसा उसका फल। परन्तु जीव यदि यह चाहे कि मेरे पाप-कर्म का फल मुझे न मिले जैसा कि आमतौर से लोग चाहते हैं, तो यह असम्भव है। कर्म का फल तो भोगना ही होगा? किस कर्म का कौन सा फल मिलेगा-यह ईश्वराधीन है और ईश्वर अपने बनाए संविधान के आधीन है।

अद्वैतवाद का खण्डन -

इस समुल्लास में ऋषि ने जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करने वाले अद्वैतवादियों का जिस विद्वत्तापूर्ण ढंग से खण्डन किया है वह भी देखते ही बनता है। सुपठित भारतीय विद्वानों और साधु-सम्प्रदाय में अद्यापि इस वाद की बहुत मान्यता है। परन्तु, जिस आधार पर जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित की जाती है, जैसे वह आधार निस्सार है वैसे ही उनके तर्क भी। परमात्मा के एकत्व के प्रति जो बौद्धिक रुझान आजकल दृष्टिगोचर होता है उसी का यह परिणाम है कि जीव और ब्रह्म को एक बतानेवाली फिलॉसफी आजकल बुद्धिवादी लोगों को अपनी ओर खींचती है। अद्वैतवादी जिन चार वाक्यों पर सबसे अधिक जोर देते हैं; वे चार वाक्य ये हैं

प्रज्ञानं ब्रह्म।।१।। अहं ब्रह्मास्मि।।२।। तत्त्वमसि।।३।। अयमात्मा ब्रह्म।।४।।

इन चारों वाक्यों को वे वेद-वाक्य या महावाक्य बताते हैं; परन्तु इन चारों में से एक भी वेद-वाक्य नहीं है। महावाक्य तो ये हैं ही नहीं-किसी सत्यशास्त्र ने इनको महावाक्य नहीं लिखा और इनके कलेवर से इनको महावाक्य कह कौन सकता है? इनमें से पहला वाक्य ऐतरेय आरण्यक का है, दूसरा वाक्य बृहदारण्यक का है, तीसरा छान्दोग्य उपनिषद् का है और चौथा माण्डूक्योपनिषद् का है।

प्रज्ञानं ब्रह्म का अर्थ है-ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है या प्रकृष्ट ज्ञानवान् है। यह अर्थ सुसंगत है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं, परन्तु ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप होने से यह अर्थ कहाँ से निकल आया कि ब्रह्म के सिवाय और किसी में ज्ञान का लेश भी नहीं है। जीव ज्ञानवान् है, परन्तु वह अल्पज्ञ है। ब्रह्म सर्वज्ञ है, परन्तु सर्वज्ञ ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करने से अल्पज्ञ जीव की सत्ता का निषेध नहीं हो सकता।

शेष भाग अगले अंक में.....

सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर विहङ्गम दृष्टि

डॉ. रामप्रकाश वर्णी डी.लिट्

(गताङ्क से आगे)

प्रश्न-८. अभी आपने सप्तम प्रश्न के उत्तर के रूप में जो परमात्मा के निराकार होने की सिद्धि दिखलायी है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि ''**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्**'' (यजु.५.१५) इस याजुष मन्त्र और ''**वामनो ह विष्णुरास**'' (शतपथ ब्रा. १.२.२.५) इस 'ब्राह्मण वचन' तथा ''**मध्ये वामनमासीनम्**'' (कठोपनिषद् ५.३) इस 'उपनिषद् वाक्य' से स्पष्ट ही विष्णुरूप परमात्मा के 'वामनावतार' की सम्पुष्टि होती है। जो कि निश्चय ही साकार था।

उत्तर- शोभनम्, अतिशोभनम्। आपके इस प्रश्न को सुनकर मनीषियों के ये वाक्य सहसा स्मृतिपटल पर उभर आये ''**नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति**'', ''**बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति**'',''**भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।**'' अर्थात् यदि कोई अन्धा व्यक्ति किसी ठूँठ से टकराकर गिरता है तो इसमें उस ठूँठ का क्या अपराध है? यह श्रुतिरूप वेद '**सर्वज्ञानमयो हि सः**' इस मनु की स्पष्ट घोषणा के अनुसार विविध ज्ञान-विज्ञानों का 'आकर-ग्रन्थ' है। अतः इसमें अल्पपठित और एकाङ्गी पाठक की कोई गति सम्भव नहीं है। वह किसी शोध के नाम पर इसके साथ अन्याय ही करेगा। अतः यहाँ जिसने अत्यन्त श्रद्धा-संयम और ब्रह्मचर्य की साधना से बहु आयामी अध्ययन के द्वारा अपने अन्तःकरण को नितान्त निर्मल बना लिया है, वही 'वास्तविकता' अर्थात् मन्त्रों के सत्यार्थ का प्रकाश कर पाता है। जो तपस्वी या ऋषिकोटिक नहीं हैं, उनकी वेदार्थ तो बहुत दूर उसमें सामान्य प्रविष्टि भी सम्भव नहीं है। आइये इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करते हैं।

जहाँ तक '**इदं विष्णुर्विचक्रमे**' इस याजुष-मन्त्र में 'विष्णु' के 'वामन' अवतार लेने की बात है, वहाँ यह जान लेना बहुत जरूरी है कि इस मन्त्र का देवता=मन्त्र का प्रतिपाद्य-विषय अर्थात् शीर्षक 'विष्णु' है। इस को निरुक्त के द्वादश-अध्याय के द्वितीय पाद में ''**अथ यत् यदा 'विषितो' व्याप्तोऽयमेव सूर्यो रश्मिभिः 'भवति' तदा 'विष्णुः'** (निघण्टु ५.६.११) भवति'' इस कथन से 'सूर्य' बतलाया गया है। वहीं अध्याय-५ खण्ड ४ में इसको उरुक्रमः=महान् पराक्रमी अर्थात् बहुगति=अत्यन्त तीव्र गतिवाला 'आदित्य' बतलाते हुए ''**विष्णुर्यज्ञः स देवेभ्य आत्मानमन्तरधात्**'' 'यज्ञ' के रूप में भी बतलाया गया है। आचार्य 'शाकपूणि' ने इसकी 'पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक' में व्याप्ति को ही इसके तीन कदम रखना बतलाया है। पृथिवी पर यह 'अग्नि' के रूप में, अन्तरिक्ष में 'विद्युत्' के रूप में तथा 'द्युलोक' में 'सूर्य' के रूप में सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। 'यज्ञ' के रूप में भी यह इन्हीं तीनों लोकों में व्याप्त हो रहा है। इसलिए 'यज्ञ' को भी 'विष्णु' माना गया है। यहाँ पर विशेष जिज्ञासु जन निरुक्त की 'दुर्ग' एवम् 'स्कन्द-महेश्वर' कृत व्याख्यायें देख सकते हैं। वहाँ पर बहुत स्पष्ट रूप में कहा गया है कि उपर्युक्त उभयविध विष्णु 'पृथिवी' आदि 'प्रकाश-रहित', 'सूर्य' आदि 'प्रकाश-सहित' और 'परमाणु' आदि 'सूक्ष्मरूप' लोकों में तीन प्रकार का अपना 'पदन्यास' रूप कार्य करता है। यहाँ पर प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं. सत्यव्रत सामश्रमीजी ने अपने अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ 'ऐतरेयालोचन' के पृष्ठ १९६ पर लिखा है- ''सोऽयमेक एव विष्णुः **पृथिव्यां** पाचक-दाहक-विद्रावक-जाठर-दाव-वाडव-गार्हपत्याहवनीय-दक्षिणेत्यादि-बहुविधाग्निरूपेणावतिष्ठते। **अन्तरिक्षे**-विद्युद्रूपेण वाष्पाकार-वायुरूपेण वा **दिवि** सूर्यरूपेणेति।'' इसका अभिप्राय यह है कि विष्णु=आदित्य ही, 'पृथिवी' पर 'पाचक, वाहक, विद्रावक, जठराग्नि, दावाग्नि, वाडवाग्नि एवम् गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, आवसथ्य व सभ्याग्नि' के रूप में अवस्थित है। यही विष्णु 'अन्तरिक्ष' में 'विद्युत्' के रूप में और 'द्युलोक' में 'सूर्य' के रूप में विद्यमान है। इसका पार्थिव रूप और सूर्यसम्बन्धीरूप सभी को सदा प्रत्यक्ष रहता है, किन्तु इसका जो 'माध्यमिक-विद्युत्' रूप है वह सदा दृष्ट नहीं होता है। इसी से इसको 'स्वप्न रूप-अनित्यदर्शन' कहा जाता है। वहीं पर पृष्ठ

११३ पर पं. सामश्रमीजी ने तैत्तिरीय सं. १.२.१३.२ के **''विष्णुरेते दाधार पृथिवीमभितो मयूखैः''** इस सन्दर्भ का उल्लेख करते हुए 'सूर्य' को ही विष्णु माना है। इसकी सम्पुष्टि श्रीमद् वाल्मीकि-रामायण के इस श्लोक से भी होती है-

''एकेन हि यदा कृत्स्नां पृथिवीं सोऽध्यतिष्ठत।'' द्वितीयेनाव्ययं व्योम द्यां तृतीयेन राघव।। १.३१.१९।।

यहाँ सुस्पष्ट ही सूर्य को ही इङ्गित किया गया है। इसके विपरीत लिखी गयी पौराणिक-लीलाओं पर दुःख प्रकट करते हुए श्री सामश्रमीजी ने लिखा है- **''अहो पौराणिककाल-माहात्म्यम्। अहो यज्ञपरव्याख्यान मात्राध्ययनाध्यापन-माहात्म्यम्।...तादृशानां हि देवानां प्रियाणाम् एतादृशेऽथ काऽस्ति चित्रितेत्यलं प्रासङ्गिकानल्पभाषणेनेति।''** इत्थम् प्रचुर प्रमाण सम्बलित इस विवरण से स्पष्ट है कि उपरिद-उद्घृत याजुष-मन्त्र में किसी साकार विष्णु के वामनावतार का वर्णन नहीं है और ना ही इस मन्त्र का ईश्वर की साकारता और निराकारता से कोई सम्बन्ध है।

अब हम उक्त शातपथी-श्रुति पर विचार करते हैं। 'शतपथब्राह्मण' में यह निम्नांकित रूप में पठित है। **''व्वामनो ह व्विष्णुरास। तद् देवा न जिहीडिरे महद् वै नोऽदुर्ग्ये नो यज्ञसम्मितमदुरिति।''** इस पर 'हरिस्वामी' ने लिखा है- **''विष्णुर्हि यज्ञः अतो 'यज्ञसम्मितम्' स्थानमस्मभ्यं दत्तवन्त इति यत्, तत् 'नः' अस्माकं 'महत्' अधिकम्।'' एवं विचार्य देवैः कृतं दर्शयति-त इति। यज्ञात्मकं 'विष्णुम्' 'प्राञ्चं' प्राक्शिरसं निपात्य दक्षिणतः, पश्चात्, उत्तरतश्च गायत्र्यादिछन्दोभिः सर्वतः पर्यगृह्णन्।''** हरिस्वामी के इस भाष्य के आलोक में यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ 'विष्णु' शब्द 'यज्ञ' का ही वाचक है। उसी की ही 'वामन' 'खर्व' यह एक विशेषण-विशिष्ट अभिख्या है, जिसका धातुलभ्य 'यौगिकार्थ' गतिशील होना है जो कि **'वा-गतिगन्धनयोः (धा.सू. २.४३) खर्व-गतौ'** (धा.सू.१.३८८) इस धातुपाठ के अनुरूप है। लोक में यह 'बौना' अर्थ में निरूढ है। इसके उक्त यौगिक अर्थ के अनुसार यह 'यज्ञ' रूपी 'विष्णु' 'भूः' 'भुवः' स्वः, रूप तीनों लोकों में वाति=खर्वति=गच्छति अर्थात् 'गति' करता है और वहाँ अपना 'परिशोधन' रूप महत्तम कार्य करता है। इसलए यह 'वामन' कहा जाता है। **'तदेवम् इदं विष्णुर्विचक्रमे'** इत्यादि मन्त्र में उपात्त 'विष्णु' क्षीरसागर में शेषशय्या पर शयन करनेवाला पौराणिक लक्ष्मीपति अभिप्रेत नहीं है। वह यहाँ अवश्य ही **''वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगत् स विष्णुः''** इस महर्षि दयानन्द कृत व्युत्पत्ति के अनुसार परमपिता 'परमात्मा' वा 'यज्ञ' ही है। इस मन्त्र में विष्णु के वामनावतार की कोई चर्चा नहीं है और न अगली विष्णुदेवताक चार ऋचाओं में भी इसका कोई सङ्केत मिलता है। यहाँ तक कि इनमें 'वामन' शब्द का प्रयोग भी नहीं हुआ है, फिर भी ऋग्वेदभाष्यकार 'स्कन्दस्वामी' और आचार्य 'सायण' ने यहाँ अपने अवतारवादी संस्कारों के आधार पर 'विष्णु' के वामन-अवतार की इस मन्त्र-व्याख्या में चर्चा की है। सायण ने विष्णु को 'विष्णुस्त्रिविक्रमावतारी और स्कन्दस्वामी ने' 'विष्णुश्च भगवान् वासुदेवः' कहकर उक्त मन्त्रार्थ प्रदर्शित किया है। इन दोनों आचार्यों का यह भाष्य मूलमन्त्रों का शब्दानुसारी भाष्य नहीं होने से सर्वथा अस्वीकार्य है। ये दोनों आचार्य 'पदम्' का अर्थ केवल लोकसामान्य 'चरण' या 'पैर' ही समझ पाये, जबकि महर्षि जी का **'पद्यते गम्येते ऽर्थो येन तत्पदम्'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'शक्तं पदम्' इस आशय से किया गया ''जानने और प्राप्त होने योग्य पदार्थ और व्यवहार'' अर्थ सर्वथा मौलिक और चमत्कृतिपूर्ण व सृष्टिनियमानुकूल है। इसमें 'अवतारवाद' की कोई गन्ध नहीं आती है, फिर ईश्वर के साकार होने का तो प्रश्न ही कहाँ रहा? किसी ने ठीक ही कहा है **''छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्''**। यहाँ तो उपर्युक्त त्रिविध जगत् (प्रकाश-अप्रकाश और परमाणुरूप अदृश्य सूक्ष्म जगत्) को जानने का ही निर्देश है, क्योंकि इससे ''उपासक'' के मन में 'उपास्य' परमात्मा के विलक्षण कार्यों को जानकर उसके प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न होगी।

वस्तुतः यह 'विष्णु' शब्द वेदार्थ की अधिदैवत, अध्यात्म और अधियन प्रक्रियाओं के अनुसार अनेक अर्थों को प्रकट करता है। जैसा कि महावैयाकरण भर्तृहरि ने अपनी 'महाभाष्यदीपिका' में स्पष्ट लिखा है-**''इदं**

विष्णुर्विचक्रमे'' इत्च्यत्र एक एव विष्णु शब्दोऽनेकशक्तिः सन् अधिदैवतमध्यात्ममधियज्ञं चात्मनि नारायणे चषाले च तथा शक्त्या प्रवर्तते।'' अर्थात् 'इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्रगत यह 'विष्णु' शब्द वेदार्थ की उक्त त्रिविध प्रक्रिया के अनुसार 'आत्मा=सूर्य, नारायण और चषाल'=फिरकी या छत्ता अर्थों में स्वशक्ति से प्रवृत्त होता है।

जहाँ तक 'मध्ये वामनमासीनम्' इस कठोपनिषद् के वाक्य में पठित 'वामनम्' पद की बात है, वहाँ भी वही वेद्य है कि 'वामन' का अर्थ वहाँ भी 'विष्णु' का वामन= ठिगना अवतार नहीं है। जैसा कि कठोपनिषद् के इस लेख से स्पष्ट है-

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते।। ५/३।।

इस औपनिषत्सन्दर्भ की व्याख्या करते हुए डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार ने लिखा है- ''लोग समझते हैं कि जीवन 'प्राण' ही है, परन्तु इस 'प्राण' को भी वही अर्थात् 'आत्मा' ही ऊपर की तरफ और 'अपान' को नीचे की तरफ धकेलता है। इनके बीच में यह 'वामनः'=सुन्दर जीवात्मा वर्तमान है। सब इन्द्रियाँ उसी की उपासना करती हैं। (द्र. एकादशोपनिषद्. पृ. ५२)। स्पष्ट है कि यहाँ भी 'वामनः' का अर्थ 'विष्णु' का 'वामन' अवतार न होकर जीवात्मा ही है। अतः इस काल्पनिक अवतारवाद की ओट में परमात्मा को सावयव और साकार सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

शेष अगले अङ्क में...

ऋग्वेद का नमूना भाष्य

मोहनचन्द

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि, वेद विरुद्ध मत खण्डन, शिक्षापत्री ध्वान्त निवारण, और पञ्च महायज्ञविधि आदि ग्रन्थों की रचना के अनन्तर वेदों का भाष्य करने का विचार किया। इसका प्रमुख कारण यह था कि वे प्राचीन ऋषि-मुनियों की भाँति वेद को सर्वोपरि मानते थे, क्योंकि सत्यार्थप्रकाश के पूर्वार्द्ध के १० समुल्लासों में जो वेदोक्त धर्म कहा गया है उसका मूल आधार वेद ही है। उनके सिद्धान्तों और शिक्षाओं का मूल आधार वेद ही था। उस समय जो भी वेदभाष्य थे उन्हें वह सर्वथा त्याज्य मानते थे।

उपर्युक्त विचारों को दृष्टि में रखकर महर्षि ने उनके द्वारा करिष्यमाण वेद भाष्य का नमूना जनता के सामने रखा। महर्षि को अपने वेदभाष्य जैसे महान् कार्य में केवल जनता से ही सहायता मिलने की आशा थी, क्योंकि वेदभाष्य सदृश महान् कार्य के लिये वह समय अत्यन्त अनुपयोगी था। इस युग में वैदिक ग्रन्थों का ह्रास हो रहा था, वेदाभ्यार्थियों की गणना अंगुलियों पर ही हो सकती थी। काशी सदृश विद्याक्षेत्र में भी वेदार्थ जाननेवाला नहीं मिलता था। वेदों की अनेक शाखाएँ तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थ लुप्त हो चुके थे। जो वैदिक ग्रन्थ विद्यमान थे, वे भी सुलभ न थे। राजकीय आश्रय का तो अवसर ही न था। वह राज्य सहायता जो सायण और हरिस्वामी को प्राप्त थी, अब पुराकाल का स्वप्न हो चुकी थी। वे विद्वान् सहायक जो स्कन्दस्वामी और सायण को अनायास मिल सकते थे अब खोजने पर भी दृष्टिगत नहीं होते थे। ऐसे कठिन समय में महर्षि दयानन्द ने अपनी विद्या, तप और लगन के कारण कुछ सहायक तैयार कर लिये थे जिनकी आर्थिक सहायता से ऋषि ने वेदभाष्य रूपी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और महाव्यय साध्य कार्य प्रारम्भ किया।

इसके लिये उन्होंने सर्वप्रथम अपने द्वारा करिष्यमाण वेद भाष्य का नमूना वि.स. १९३१ में जनता के सम्मुख रखा तथा उस समय के सब विद्वानों के पास भेजा। यह भाष्य गुजराती, मराठी व संस्कृत तीन भाषाओं में था। इसकी प्रति परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं है। इस नमूना भाष्य का उल्लेख श्री देवेन्द्र नाथ जी द्वारा संकलित महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र में निम्नांकित प्रकार है-

''स्वामी जी ने ऋग्वेद के पहले सूक्त का भाष्य जिसमें गुजराती और मराठी अनुवाद भी था, वेदभाष्य के नमूने के तौर पर प्रकाशित किया जिसमें ऋग्वेद के पहले

मन्त्र '**अग्निमीळे पुरोहितम्**' आदि के दो अर्थ किये थे एक भौतिक दूसरा परमार्थिक। उसकी भूमिका में लिखा था कि मैं चारों वेदों का इसी शैली पर भाष्य करूँगा। यदि किसी को इस पर कोई आपत्ति हो तो पहले सूचित कर दें ताकि मैं उसका खण्डन करके ही भाष्य करूँ।''

यह नमूना भाष्य महर्षि ने काशी के पण्डित बालशास्त्री, स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती प्रभृति तथा कलकत्ता तथा अन्य स्थानों के विद्वानों के पास भेजा था, परन्तु किसी ने भी उसकी आलोचना नहीं की।

पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक के अनुसार यह नमूना भाष्य उनके देखने में नहीं आया किन्तु निकला अवश्य था। इसका निर्देश संवत् १९३२ में प्रकाशित **वेदान्तिध्वान्त-निवारण** के अन्त में 'पुस्तकों के विज्ञापन में मिलता है।' वहाँ इसका मूल्य एक आना लिखा है। ऐसा ही एक विज्ञापन माघ संवत् १९३२ में छपे '**श्री आर्यसमाज ना नियमोपनियम्**' मुम्बई के अन्त में भी मिलता है। इससे स्पष्ट है कि यह नमूना १९३२ में या इससे पूर्व अवश्य छपा था।

महर्षि दयानन्द द्वारा वेदभाष्य नमूने का एक अन्य अंक संस्कृत और प्राकृत (हिन्दी) में निकाला गया। यह काशी की लाजरस प्रेस में वि. सं. १९३३ (सन् १८७६) में छपा था। यह अंक २४ पृष्ठों का है। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त के ९ मन्त्रों का पूरा भाष्य तथा द्वितीय सूक्त के पहले मन्त्र का संस्कृत में अधूरा **भाष्य अथैषां संक्षेपतोर्थः** से **वैदिक शब्द निर्देशे** तक प्रकाशित किया गया था। इसमें प्रायः भौतिक और पारमार्थिक दो-दो प्रकार के अर्थ दर्शाये गये हैं। इसमें मन्त्र सं. १,२,३,४,५ तथा ७ के दो-दो अर्थ तथा मन्त्र सं. ६,८ व ९ वें मन्त्र का एक-एक अर्थ ही है। इसमें मन्त्रों का विस्तृत भाष्य है। प्रथम मन्त्र '**अग्निमीळे पुरोहितम्**' का भाष्य तो बहुत ही विस्तृत है। इसमें इस मन्त्र के '**अग्नि**' पद से पारमार्थिक अर्थ में ईश्वर का तथा भौतिक अर्थ में आग का ग्रहण किया गया है। अग्नि शब्द से ईश्वर अर्थ लेने में वेद से लेकर उपनिषदों तक के लगभग २० प्रमाण दिये गये हैं।

प्रस्तुत नमूने के वेदभाष्य पर तथा **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** के प्रारम्भिक भाग पर आर. ग्रिफिथ, सी.एच. टानी, पं. गुरुप्रसाद, पं. महेशचन्द्र न्यायरत्न और राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द आदि ने कुछ आक्षेप किये थे। उनके उत्तर ऋषि दयानन्द ने कुछ पत्रों में, **भ्रान्तिनिवारण** तथा **भ्रमोच्छेदन** पुस्तक में दिये थे।

पं. महेशचन्द्र ने वेदभाष्य पर जितने आक्षेप किये थे उनमें सबसे मुख्य तथा प्रबल आक्षेप यह था कि अग्नि शब्द का अर्थ ईश्वर नहीं हो सकता। उनका लेख इस प्रकार है-

''खैर ये तो साधारण बातें थीं, परन्तु अब मैं भारी-भारी दोषों पर आता हूँ। मन्त्र-भाष्य के प्रथम संस्कृत खण्ड में '**अग्निमीळे पुरोहितम्**' इसके भाष्य में स्वामी जी ने **अग्नि** शब्द से **ईश्वर** का ग्रहण किया है जबकि प्रसिद्ध अर्थ **अग्नि** शब्द का सिवाय '**आग**' के दूसरा कोई नहीं हो सकता तथा सायणाचार्य वेद के भाष्यकार की इसी विषय में साक्षी वर्तमान है।'' -**भ्रान्ति निवारण**

वेद में **अग्नि** शब्द से **ईश्वर** का भी ग्रहण होता है, इस विषय में महर्षि ने वेदभाष्य के नमूने में प्राचीन आर्षग्रन्थों के लगभग २० प्रमाण उद्धृत किये हैं। पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न ने उन्हें न समझकर उपर्युक्त आक्षेप किया है। महर्षि दयानन्द ने इस आक्षेप का उचित उत्तर देते हुए लिखा है-

''सच तो यह है कि उन्होंने प्राचीन ऋषि-मुनियों के ग्रन्थ कभी नहीं देखे और उनको ठीक-ठीक अर्थ समझने का बिल्कुल ज्ञान नहीं। क्योंकि जिन-जिन ग्रन्थों अर्थात् वेद, शतपथ और निरुक्त आदि के प्रमाण मैंने वेदभाष्य में लिखे हैं उनको ठीक-ठीक विचारने से आयने के समान जान पड़ता है कि **अग्नि** शब्द से **आग** और **ईश्वर** दोनों का ग्रहण होता है। जैसे देखो कि -**इन्द्रं मित्रं वरुणं** (ऋ. १.६४.४६); **तदेवाग्निस्तदादित्य**० (यजु. ३२/१); **अग्निर्होता कवि** (ऋ. १.१.५), **ब्रह्मह्याग्नि** (श. १.४.१.११) **आत्मा वा अग्निः** (शतपथ ७.२.३.२)। देखिये विद्या-नेत्रों से इन पाँच प्रमाणों से **अग्नि** शब्द से परमेश्वर का ग्रहण होता है।'' -**भ्रान्ति निवारण**

महर्षि ने वेदभाष्य (नमूना) में **अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति** इत्यादि निरुक्त (७.२४) का प्रमाण देकर लिखा है-

''अग्रणीः सर्वोत्तमः सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्यैव प्रतिपादनादीश्वरस्यात्र ग्रहणम्। दग्धादिति विशेषणाद् भौतिकस्यापि।''

यही बात भ्रान्तिनिवारण में भी कही है- ''तथा निरुक्त से भी परमेश्वर और भौतिक (अग्नि) उन दोनों का यथावत् ग्रहण होता है। देखो एक तो '**अग्रणी**' इस शब्द से उत्तम परमेश्वर ही जाना जाता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं इत्यादि **-भ्रान्तिनिवारण**

पं. महेशचन्द्र ने निरुक्त के पूर्वोक्त अर्थ पर भी आपत्ति की थी। **-देखो भ्रान्तिनिवारण पृष्ठ २१०**

अग्नि शब्द का वेद में ईश्वर अर्थ भी होता है। इसके लिये नये प्रमाणों की कोई आवश्यकता नहीं। स्वामी जी ने वेदभाष्य के नमूने में जितने प्रमाण उद्धृत किये हैं, वे इस अर्थ को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं। उनके ऊपर जो आक्षेप किये जा सकते हैं, उनका उत्तर भी भ्रान्तिनिवारण में भले प्रकार दे दिया है।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार अग्नि शब्द से स्वामी शंकराचार्य जी भी परमात्मा अर्थ ग्रहण करते हैं यथा-

'अग्नि शब्दोऽप्यग्रणीत्वादियोगाश्रयेण परमात्मविषय एव भविष्यति।'

वेदान्त शांकर भाष्य १.२.२९।।

स्वामी शंकराचार्य के इस लेख से सूर्य की भाँति स्पष्ट है कि अग्नि, वायु, आकाश आदि शब्दों का परमेश्वर अर्थ केवल स्वामी दयानन्द ने ही नहीं किया अपितु प्राचीन सभी आचार्यों को यह अर्थ अभिप्रेत था।

इस नमूने भाष्य की द्वितीयावृत्ति 'ऋग्वेद भाष्य के प्रथम नौ मन्त्रों का भाष्य' नाम से विक्रम संवत् १९७३ (सन् १९१६) में वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित हुई। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल प्रथम सूक्त के ९ मन्त्रों का भाष्य ही प्रकाशित हुआ। दूसरे सूक्त के प्रथम मन्त्र के अधूरे भाष्य से आगे का भाष्य इसमें नहीं छापा गया। होना तो यह चाहिये था कि जो अधूरा भाष्य प्रथमावृत्ति में छप चुका था। उसके आगे का भाष्य भी इसमें छपता।

इस नमूने भाष्य की तृतीयावृत्तिः विक्रम संवत् २००० (सन् १९४३) में प्रकाशित की गई, इसमें भी द्वितीया वृत्ति के समान केवल ९ मन्त्रों का भाष्य ही प्रकाशित किया गया।

इस नमूने भाष्य की चतुर्थावृत्ति वि. सं. २०२७ (सन् १९७०) में वैदिक यन्त्रालय, अजमेर से प्रकाशित हुई इसमें ऋग्वेद भाष्य के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त से तीसरे सूक्त के चतुर्थ मन्त्र तक कुल २२ मन्त्रों का भाष्य है। इसमें प्रथम सूक्त का भाष्य तो नमूने भाष्य की प्रथमावृत्तिः के समान ही है। शेष मन्त्रों का भाष्य अति संक्षिप्त है। परन्तु, प्रत्येक मन्त्र के २-२ अर्थ हैं। इसमें भी दूसरे सूक्त के प्रथम मन्त्र का विस्तृत भाष्य नहीं है।

पुनः वैदिक पुस्तकालय दयानन्द आश्रम अजमेर से (सन् १९८८ वि. सं. २०४५) में महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेद का नमूना भाष्य प्रथम संस्करण के रूप में प्रकाशित किया गया। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के दूसरे सूक्त के प्रथम मन्त्र का विस्तृत भाष्य है। इसमें इस मन्त्र का अधूरा भाष्य जो नमूने भाष्य की प्रथम आवृत्तिः में छपा था वह था उसके आगे का सम्पूर्ण अर्थ दिया गया है। इस भाष्य में केवल एक ही मन्त्र की दो प्रक्रिया-पारमार्थिक और भौतिक में दो अर्थ किये गये हैं। इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या १८ है। इसमें वायु से अग्नि के समान परमात्मा और वायु अर्थ ग्रहण किये गये हैं। वायु से ईश्वर अर्थग्रहण में शतपथ ब्राह्मण, निरुक्त एवं वेदों के प्रमाण दिये गये हैं।

इस प्रकार परोपकारिणी सभा द्वारा महर्षि के सम्पूर्ण वेद भाष्य का नमूना प्रकाशित कर दिया गया है। महर्षि इसी प्रकार का सम्पूर्ण वेदभाष्य प्रकाशित करना चाहते थे, किन्तु सम्भवतः उन्हें यह पूर्वाभास हो गया था कि वह इस प्रकार का भाष्य अपने जीवन में सम्पूर्ण न कर पायें अतः उन्होंने इसे कुछ संक्षिप्त कर ऋग्वेद और यजुर्वेद का भाष्य किया।

इस लेख का अधिकांश भाग आदरणीय पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक की निम्नलिखित पुस्तकों से संकलित किया गया है-

१. ऋषि दयानन्द लघुग्रन्थ संग्रह

२. महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास

३. मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द और उनका कार्य।

५, हरिओम् मार्ग, भजनगंज, अजमेर (राज.)

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की नि:शुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ फरवरी २०२० तक)

१. श्री किशोर सिंह, ऋषि उद्यान, अजमेर २. श्री वरुण माचरा, हिसार ३. श्री रमेश शर्मा व श्रीमती सुशीला आर्या, अजमेर ४. श्री विपुल चावला, राजकोट ५. श्री रामजीवन मिश्र, जयपुर ६. डॉ. प्रवीण माथुर व डॉ. ऋतु माथुर, अजमेर ७. श्री मनोज आर्य, हरियाणा ८. श्री माणकचन्द जैन, छोटी खाटु ९. डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, अमेठी।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१ से १५ फरवरी २०२० तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला केन्ट २. श्री मुकुन्द सिंह भाटी, जोधपुर ३. श्री ऋषभ, जयपुर ४. श्रीमती सत्यवती मित्तल, भरतपुर ५. श्री वरुण माचरा, हिसार ६. श्री संजय विरमानी, लुधियाना ७. श्री ललित जैन, पालनपुर ८. श्री गजेन्द्र चौधरी, कुचेरा ९. श्रीमती सुनीता वासुदेव, डीसा १०. श्री राधेश्याम यादव, बारां ११. श्री दिनेश नागपाल, गुरुग्राम १२. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु, १३. श्री हरसहाय सिंह (गंगवार) आर्य, बरेली १४. श्री प्रमोद कुमार, गुरुग्राम १५. श्री धर्मपाल आर्य, पंचकुला १६. श्री आकाश पटेल, इटारसी।

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें। **कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ

पृष्ठ : २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा

पृष्ठ : ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर

पृष्ठ : ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग

पृष्ठ : २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बहार का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी

पृष्ठ : १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-संपादक**

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ६ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	५१०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,००,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

शोक समाचार

अतीव दु:ख का विषय है कि दि. २७ जनवरी २०२० को परोपकारिणी सभा के वरिष्ठ उपप्रधान श्री ओममुनि जी के लघु भ्राता ब्यावर निवासी श्री श्याम झँवर के सुपुत्र श्री रवि झंवर का ३४ वर्ष की अल्पआयु में अकस्मात हृदयघात से निधन हो गया।

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को सद्गति व शोकसन्तप्त परिवार को इस विकट विपत् में धैर्य प्रदान करे।

परोपकारिणी सभा की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।